

पाठक वृत्त ।

आध्यात्मिक प्रज्ञा में सुगमनया प्रवेश कराने के हेतु श्री १०५ बुद्धमनोहरणी वर्णाची का आध्यात्मिकमूत्र माथ पृथक् प्रकाशित हो चुका है। यह तत्वसूत्र भी आपने समस्त समपण किया जा रहा है। इसका पठन पाठन में स्वयं पर भरोसा किया जाना चाहिए। सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होगी। आशा है पाठक वृत्त इसका पत्रकर वर्णाची के उत्साह का वृद्धि गत करेंगे तथा स्वकल्याण करेंगे।

ग्रन्थ संशोधन में काफी ध्यान दिया गया है। यदि किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो तो सूचित करने का कृपा करें। ताकि आगामी संस्करण में शुद्ध किया जा सके।

निबन्ध —
विहारीलाल लैन शास्त्री
मेरठ मद्र



* श्री तत्वसूत्रम् *

प्रथमोऽध्यायः

सूत्र

ॐ १११

टीका—ॐ यह मङ्गलाचरखान्मङ्ग एव विवचनात्मक सूत्र है। ॐ शब्द मर्त्य पूज्य आत्मा गमित है। सर्व त्रेष्ट श्रौं पूं शुद्ध आत्मा वह है निम्ने रागद्वेषादि निम्न नष्ट हागये, आत्माक सर्व गुण पूर्ण सीमा के निम्न के प्राप्त होगये। जो कर्म और शरीर से रहित होगये हैं वे 'अशरीर' कहलाते हैं। अशरीर होनेसे पहिले वे आत्मा जो कि शरीर सहित तो होते हैं परन्तु आत्मा के गुणों का पूर्ण निम्न वाले एव रागद्वेषादि दोषों से रहित होते हैं वे 'अरहत' कहलाते हैं। अरहत अस्थो से पहिले वे जो आत्मा मर्त्य परिग्रह का त्याग करके आत्मसाधना म लीन रहते ह वे 'मुनि' कहलाते हैं। मुनियों में जो प्रधान होत ह वे 'आचार्य' कहलाते हैं। तथा मुनियों म जो विशिष्ट बानी होते हैं और जो पठन पाठन भी करते हैं वे आचार्य द्वारा निर्णीत 'उपाध्याय' कहलाते हैं।

१—ॐ शब्द में इन पाँचों प्रकार के आत्मात्र। ३ नाम गमित हैं, क्यों कि इन पाँचों परमेष्ठिया के नामात्वे प्रथम अक्षर व्याकरण प्रक्रिया से मिना देने से 'ॐ' शब्द बनता है। जैसे अरहत का 'अ'। अगरीर का अ। आचार्य का 'आ'। उपाध्याय का 'उ'। मुनि का 'म्' अ+अ+आ+उ+म्=आ (ॐ)।

अ+अ यहा 'अत्र सर्वेषु दार्ध' म सूत्रसे दीर्घ हाकर 'आ' हा गया। आ+आ यहा भी 'अत्र मरण नीर्व' इस सूत्रसे दीर्घ हाकर 'आ' हा गया। आ+उ यहा 'आढगुण' इस सूत्र से गुण (ओ) हाकर 'ओ' हा गया। ओ+म् यहा 'पिरामे' इस सूत्रसे अनुस्वार हाकर आ सिद्ध हुआ।

२—ॐ में यह भी अर्थ गमित है कि अधोलोफ, अपनिलोफ (मपलोफ) उर्ध्वलोफ इन तीना लोफों में उपर जो सिद्ध गिला है, उसके भी उपर जो रागडेप कर्म गरीर से रहित नानामर सिद्धत्व पिरानमान है उनका व्यान रहा।

यहा अधोलोफ का 'अ', अपनिलोफ का 'अ', उर्ध्वलोफ का 'ऊ'। इन तीनों वर्णोंम सधि हान से ओ बनता है निमरी मुद्रा अ है। यह तीना लोफों का वाचक है। उसके उपर इस तरह अर्थात् अर्धरुद्र के आकार

मिद्धशिना है। इमक ऊपर ० शून्य अर्थात् जो रागद्वेष
आदि विभागा से शून्य है, वान ही निम्न शरीर है, जो
वान स्वरूप आदि मध्य अन्त पर रहित है, ऐसे परमात्मा
मुमुक्षुया क पृज्य एव परम आर्ग्य है।

३-ॐ इममें म-र-ज्ञान रूप पाये परिष्कृत गर्भित
हैं। यथा आभिनिवाधिज्ञान (मतिज्ञान), आगमज्ञान
(श्रुतज्ञान), अरधिज्ञान, अन्तःकरण पर्यायज्ञान (मन
पर्यायज्ञान), उत्कृष्ट ज्ञान (कवल ज्ञान)। तथा ऊपर ०
है वह मामात्र ज्ञान वाचक है निम्न न आदि है, न
मध्य है, न अन्त है। सब पर्यायों में रहता हुआ भी
स्वामी पर्याय मात्र नहीं है।

यहा प्रत्यक्ष ज्ञान पर्यायवाचक शब्द का आदिम
आदिम अक्षर लेकर परस्पर सवि करने से इस प्रकार अ+
आ+अ+अ+उ=ॐ हागया है। इसके ऊपर सामान्य
ज्ञानकारक ० है सो सब मिलकर ॐ बन गया। यहा यह
जानना चाहिये कि ज्ञान की अरस्थानों में सर्वोत्कृष्ट केवल
ज्ञान है। इम कवलज्ञान शब्दका भी अर्थ यही ध्वनित
हाता है कि कवल = सिर्फ ज्ञान। यह उत्कृष्ट ज्ञान सामा-
न्य ज्ञान की उन्मुखता से प्रकट हाता होता पूर्ण ज्ञान शक्ति
के विकार रूप उत्पन्न हाता है जो कि अनन्तकाल (सदैव)
तर रहगा। हम सबके भी यही पुत्रपार्थ होना उत्तम है

कि सामान्य ज्ञान के उद्गार होकर सञ्चार दृष्टि के दृग्
पनाव ।

४—अब निरचनानामक अर्थ कहते हैं—ॐ यह शब्द
ब्रह्म है, जैसे कि तन् यह ज्ञान ब्रह्म है और मन् यह अर्थ
ब्रह्म है । किसी पदार्थ के बोध में मुक्ति शब्द अर्थ तीन
आवश्यक हैं । यहाँ शब्द के विषय में व्यापक तत्त्व लिया
गया है, जो कि ॐ शब्द से मुद्रित है । ॐ में सर्व शब्द
गमित है अथवा सर्व शब्दों का एक रूप में प्रतिनिधि
यह ॐ शब्द है । ॐ तन् मन् रहने में तीनों व्यापक
तत्त्व आ गये । ॐ से वाच्य, तन् से ज्ञेय, मन् ब्रह्म है ।

दृश्य मायामय व कल्प्य मायामय से प्रचर तत्त्व
का वातावरण प्राण्यरहार में आया तब उम अलौकिक
विशाल तत्त्व के प्रतिपादक वचन नहीं व, सभी लिय मानों
सर्व शब्दों ने अपना एक प्रतिनिधित्व ॐ के माँष,
सो वह वाता ॐ के ही वह सारा अन्वय रहस्य के
माय एक रहस्य यह भी है जो 'हा' ही सर मरा ।

५—यह ॐ उपाय उपय भाव के भी अपनी आश्रित
से प्रशिक्षित कर रहा है कि वह शून्यध्वनित परम तत्त्व जो
अपने में अभिन्न व 'सर्व' से भिन्न, स्वभाव में तन्मय व
परभाव से अममरत, आनन्दघन ज्ञानपुञ्ज है वह ईसा २
दृष्टियाँ के उपाय से उपलब्ध होता है ।

अ० उ०म आकृति क ५ भाग हैं उ - ० - ० प्रथम भाग एक रसात्रा स निमित्त, तीन जैसा अद्भुत, भेद या रहस्य का प्रतिपादन व्यवहारनय का प्रतीक है । यही भी प्रथम अङ्कित है क्योंकि मन की शुभ्र्यात यहा से है, व्यवहार से ही लोभ है, उपद्रव है, तीर्थ है । तृतीय भाग जो ० शून्य पर प्रशङ्कित है वह निश्चयनय का प्रतीक है । जैसे शून्य आदि माय अन्तः पर रहित है वैसे ही निश्चय नय का माय शुद्ध श्रैलिक तत्त्व आदि मध्य अन्त पर रहित है । जैसे शून्य एकाकारता, अमेत का उत्पत्ता है एमी प्रकार निश्चय नय भी अमेतमय एव तत्त्व का प्रतिपादन है । द्वितीय भाग रसाकित प्रमाण का प्रतीक व्यवहार और निश्चय दोनों को छुट्टा हुआ है, दोनों नया को माय रहा है, सापक्ष बना रहा है, सकल का आश्रय करता है । निमित्त यह सिद्ध हुआ कि व्यवहार और निश्चयनय स पदार्थों का जानकर मरुत का अविगत न पर प्रमाणित पर, निश्चय तत्त्व की उन्मुक्तता से इन तीनों दृष्टिया से भी पर बन पर, अर्थान् नहा न व्यवहार दृष्टि रही, न निश्चय दृष्टि रही, न प्रमाण दृष्टि रही ऐसी स्वाभूति रत्ना की जागृतपर । अं क उपर उ १ पर जो द्वितीयपद की कना की तरह है, यह स्वाभूति का प्रतीक है । इम निमित्त अविच्छिन्न, भेद रहित, स्वाभूति क दृढ़

निश्चयन परिणामन से ० शू प अर्थात् गग डेप रहित, आदि मध्य अन्तर रहित, सम से उपर विराममान, देतीयमान, सर्व दृढा स रहित निच ममय सार तत्र उपाव्य होता है जो मि मुमुबुवा का लक्ष्मण है ।

६-ॐ यह शब्द तत्र प्रतिपाद्य है । यह वस्तु का स्वरूप ज्ञाता है-मि वस्तु उत्पाद व्यय शीघ्र कर महित है । ॐ म तीन शब्द गमित ह अ, उ, म जिन म अ ता अत्यय से कहता है, उ उत्पाद का कहता है म मध्य का कहता है परस्पर मवि होन से ॐ शब्द बना । यही ब्रह्मा विष्णु महेश शब्द से भी प्रसिद्ध है ब्रह्मा का पाचन शब्द अज है निमगा प्रथम अक्षर अ लिया गया और विष्णु का पचापचाय शब्द उ है, तथा महेश का आदिम अक्षर म लिया गया । ब्रह्मा से उत्पादक माना गया है अर्थात् वस्तु म रहने जाना उत्पाद अश ब्रह्म है तथा यय (महार) अश महेश है एव शीघ्र (रक्षण) अन्ध विष्णु है, इम प्रकार वस्तु त्रिदवतामय (त्रिलक्षणात्मक) है । इम ही वस्तुस्वभावा क कारण धर्म से आवश्यकता हुई है जो मि अनादि से ही प्रसिद्ध है ।

आत्मा यदि नया नया उत्पन्न होता रह व उत्पन्न हुआ नष्ट होता रह तो धर्म कौन कर और क्या करे ? क्योंकि इस मन्तव्य में आत्मा ता क्षणमात्र रह कर समाप्त हो

जाना । तथा आमा यदि कुछ परिणाम ही न कर सृष्टि
अपरिणामी रह तो उस में कुछ होना तो है ही नहा, मुक्ति
कैसे दिलाते ? फिर और क्या प्रश्नमय बनाते ?

आमा भी वस्तु है, द्रव्य है अतः उत्पादक्यय ध्रौव्य
युक्त है । फलितार्थ यह हुआ कि आमा मटा रहन वाला
है परन्तु अपनी अस्मिता, गतिया चलता रहा है जैसे
शुभ अशुभ भाग करता है वैसे ही शुभ अशुभ फल भोगता
चला आया है, भोगना पहला हम ही हम का, अतः शुभ
अशुभ भाग क विना ना आमा का चला दृष्ट स्वभाव है
जो कि स्वयं गुरु गति पूर्ण है उप न्य रहना अर्थात्
वर्म रहना आवश्यक है ।

८-ॐ यह शब्द आमाही तीन दशाओं का शब्दो
न्याय विधि द्वारा प्रदर्शित है ॐ मे ३ वर्ण ह अ, उ, म् ।
जब यह जोला जाता है तब मुह अक्षर चलता है, पहि
हा जाता है, इस प्रकार क अनुस्य आमा का यहिाम
दशा है । उस दशा में जीव अपने स्वल्प से च्युत होकर
पहिमु ग्य हो जाता है, वायु पदाभा की ओर चलता है ।
उपेक्षने में गुरु कुछ अन्त को होता है अन्त होता है, कम
चला रहता है, अन्त अनुस्य आमा अन्तरात्मा होता है,
इस दशा में यह वाह्य रक्षाणि भागों के लिये लुप्त बट तो
नहा रह पाता लक्षित अन्त अन्त रहता है, अन्तर्मुख

जाता है। मूत्रे लने म सुग्य पूर्व गत हो जाता है इमक अनुरूप राग द्वेषादि सब विचार तिलकुल समाप्त जहा हो चुकत है एमो परमात्म शुद्धावस्था का यह प्रतीक है। तात्पर्य यह है कि ॐ यह शब्द असे बहिर्गत्मा, उसे अन्तरात्मा, मूत्रे परमात्मा उस प्रकार त्रिविध आत्मा का स्वरूप है।

८-ॐ यह शब्द ब्रह्म है, सबज्ञ सशरीर परमात्मा की दिव्य ध्वनि जिसे सुन कर गणेश देव द्वापशाङ्ग की रचना करत है और प्रत्यक्ष प्रोता अपनी योग्यता से उठे हुए भावों का स्वयं समाधान पाता है, वह दिव्य ध्वनि ॐ की ध्वनि से होता है अतः मंत्र आगम का मूल बीज ॐ यन् शब्द है।

९-ॐ यह मंत्रा का मूल रहस्य है मंत्र प्रायः ॐ शब्द से शुद्ध क्रिय जात है अतः "ॐ" मंत्र प्राण है।

१०-ॐ यह शब्द देव, शास्त्र, गुरु इन तीनों का गौतम है। आप्त का प्रथम अक्षर आ, उक्ति का प्रथम अक्षर उ और मुनि का प्रथम अक्षर म् यह तीनों परस्पर सहित होकर ॐ बन जाता है। तत्प्रभूत उपाय उपेय समझने क लिये देव, शास्त्र, गुरु इन तीनों का यथार्थ परिचान आवश्यक है।

११-ॐ यह शब्द सम्यग्दर्शन के प्रयोजनभूत मन्त्र

तत्त्वा या प्रतिपाद्य है। सप्त तत्त्वोंक ये नाम हैं—१ आत्मा
२ अनात्मा, ३ आश्रय, ४ अनुस्थिति, ५ अनुत्पत्ति, ६
उत्तरण, ७ मोक्ष, इन के आदि आदि के एक अक्षर रख कर
मन्त्र करने से ॐ बन जाता है। अतः ॐ क कहने में सात
तत्त्वा या परिणाम होता है तिन को भूतार्थनय से एकत्र में
ले नाकर उन मंत्र विरुद्धों क भी त्याग पूर्वक अभेद प्रति
पासी तिन चैतन्यभास का अनुभव करता है।

१०-ॐ यह शब्द सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्
चारित्र्य या प्रदर्शन है। यथार्थ अलोकन-सम्यग्दर्शन, यथार्थ
उद्योग सम्यग्ज्ञान यथार्थ मौन-सम्यक्-चारित्र्य है। यहा
अवलोकन का अ, उद्योग का उ, मौन का मूतीनों की
मन्त्रि होने पर ॐ यह सिद्ध होता है। अतः ॐ मोक्षमार्ग
या प्रतिपादक है।

इस प्रकार ॐ इस ध्वनि से मंगलाकरण, तत्त्वस्मरण
करके व्यापक शब्दब्रह्म का वर्णन किया।

अत्र नाना ब्रह्म का सक्त करते हैं—

तत् ११२

वह यह चैतन्यचमत्कार मात्र नानाकार अन्तरग
में अचरचायमान निजस्वरूप से तत् है।
ज्ञानभास आकार प्रकार से रहित है अतः वह अमीम है,
सर्व क्षेत्र में स्थित सर्व द्रव्य गुण पर्यायों क जानने क
स्वभास रूप, सहन शक्ति रखता हुआ, व्यापक ज्ञान क

शब्द से वाच्य व स्वीकृत है और तत् त् से रम्य है ।
 परमार्थत स्याममोघ से अधिक् तुल्य भी नहीं प्रतिभाममान
 होता और वह ही प्रतिभास्य स्वरूप की अपेक्षा लोकोत्तर में
 व्यापक है । लोकोत्तर ही है अत इसे जानता है किंतु
 ज्ञान अगति से लोकोत्तर को जानता हा एमी बात नही है ।
 यदि अनन्त भी लोकोत्तर हा तब ज्ञान उह
 जानता ही । ज्ञान का स्वरूप ज्ञान है अत
 सर्व ज्ञानों क स्वरूप में विसृष्टता न होने से वह एव ज्ञान
 एक ब्रह्म, एक ईश्वर आदि अनेक नामों से उहा जाता है ।
 ज्ञान भावात्मक तत्त्व है, अत निराकार है (यहा अर्थ ग्रहण से
 रहितपने की विवक्षा नहीं), ज्ञान स्वरूप म लोकोत्तर प्रीति
 अप्रीति ध्यान व्याल वामना भावना आदि काइ गुण नहीं है
 अत यह निर्गुण है, परन्तु इस चैतन्य में से अनेक पथाय
 आविर्भूत होती है । अत रूपा हैं, तथापि वह चैतन्य
 खान्ना नहा हो जाता त्म कारण पूर्ण है । इस चैतन्य की
 आवृत्ति नहा है क्योंकि अस्मत् की उत्पत्ति नहा होती । इसी
 प्रकार इसका अन्त भी नहा है क्योंकि मत् का विनाश नहा
 जाता । इस कारण यह ज्ञानात्मक तत्त्व जैसे क्षाप्तया
 व्यापक है, वैसे क्षाप्तया व्यापक है, अर्थात् लोकोत्तर
 लोकोत्तर और विशाल विषय यह तत्त्व है, ज्ञान
 अपनी वाप्तिमत्ता का लिये दृग् रहता, इप्तिमत्ता काइ

न रुइ विशेषरूप ही हाती है। अत वह विशेष, विशेषज्ञान क नाम से सिद्धात-मम्भत है। यह विशेषज्ञान आदिमान पर अन्तवान् है इम लिये अन्य टार्गनिकों ने यह रल्पना की कि 'विगेरानान स्त्री आदि हाने के अनतर पूर्वक्षण म वह तच्च निमग कि विशेषज्ञान का आभिमान हुआ है, अजमवापिहारण रूप निर्गुण निष्क्रिय (निष्पर्याय) स्तत्र है'। परन्तु तत् शब्द से स्मर्तव्य ज्ञानस्वरूप वह ब्रह्म एक क्षण भी निष्पर्याय नहा हाता। हा ! सामान्य विशेषात्मक ज्ञान ब्रह्मों प्रला द्वारा सामान्य और विशेष अररप भिन प्रतीत हा जात है तथापि ३ भिन्नमत्तात्मक नहीं हैं, केवल लक्षणतया पृथक् हैं। इस तत् के स्मर्तव्य के निपय में नाना रल्पनाओं क कारण निभिन्न र्गन हा गये हैं। वे र्गन इम तत् क धर्म हैं। किन किन दृष्टियों से वे धर्म हैं उन उन ममस्त दृष्टियों का प्रतिपादन 'स्याद्वाद' है और उन सब धर्मों का ममवाय अनेजात है। उस सर्व धर्म विशिष्ट धर्मों का प्रतिमाप करने वाला तच्च तत् शब्द से वाच्य है। इम प्रकार तत् रूप ज्ञान ब्रह्म का वर्णनकिया। अत्र शब्द ब्रह्म और ज्ञान ब्रह्म क वर्णन क बाद अर्थ ब्रह्म का वर्णन करते हैं।

सत् १।३

ॐ शब्द से वाच्य, तत् शब्द से ग्राह्य अर्थ ब्रह्म सत् स्वरूप है। सत् में सर्व अर्थ निहित है। जो सत् नहीं

वह अर्थ नहीं। सत् उत्पादव्ययप्रौव्यात्मक है। यह सामान्य दृष्टि से एक है, द्रव्य दृष्टि से अनन्तद्रव्यात्मक है क्योंकि सद्रभूत वस्तु प्रत्येक अखण्ड है। उसकी वर्तमान क्षणिकी परिणति उत्पाद—व्यय—स्वरूप है। वही परिणति उत्पादस्वरूप है, वही परिणति व्ययस्वरूप है। वर्तमान पर्याय में अनन्तर पूर्व पर्याय का अभाव है, अतः व्ययस्वरूप है। वर्तमान पर्याय पूर्वममयम नहीं नवीन ही हुई है अतः उत्पादस्वरूप है। सत् यहीना वही अनादि अनन्त है, निम्नका कि पर्याय बनती रहती है, अतः वस्तु इस ही प्रकार सत् स्वरूप है। सत् क कहना म सर्व अर्थ आ गये। अतः सर्व अथा की ओर से प्रतिनिधि मन है। अथवा समा अर्थ ज्ञानात्मक, शब्दात्मक व अर्थात्मक होते हैं, निम्न में सारा विश्व शब्दात्मकता से अहै वानात्मकता से सत् है, अर्थात्मकता से सत् है। इस प्रकार मक्षेप से सत् का वर्णन करके उसकी विशेषता का वनात हुआ अत्र कहेंगे निम्न म प्रथम सूत्र कहते हैं—

एकम् । १ । ४ ।

वह सत् एक अथवा एक स्वरूप है। पदार्थ म सत्त्व वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि अनन्त गुण हैं, निम्नमें करल मत्त्व क स्वरूप का दृष्टि से देगा तो निम्न द्रव्य छूट कर, मात्र सत् स्वरूप उपयोग म रह जाता है। वहा मन् एक है।

‘एक है’ इस विरुद्ध से रहित एक अद्वैत है। यह सामान्यदृष्टि का विषय है।

नित्यम् १ । ५

वह सत् नित्य है। मत् अथवा वस्तु सामान्य विशेषता होती है, तब उस वस्तु का सामान्य स्वरूप को दृष्टि तो वह अपरिणामी है, नित्य है परन्तु वह स्वरूप विशेष रहित नहीं है, किन्तु सामान्य का स्वभाव नित्य है। मोक्ष भाव वस्तु नहीं उत्पन्न नहीं होती अतः जो है वह अनादि स और जो है उसका भी नाश नहीं होता। अतः जो है वह अनन्तमान तक रहेगा। इस प्रकार सत् नित्य है।

सप्रतिपक्षम् १ । ६

वह सत् सामान्य दृष्टि से निम्न गुणों से सहित है विशेषदृष्टिसे उन गुणोंके प्रतिपक्षी गुणों से सहित है। जैसे कि सामान्य से सत् सर्व पदार्थों में स्थित है तो विशेषदृष्टि से सत् एक एक पदार्थमें स्थित है। सामान्य दृष्टि से सत् सर्व विरुद्धस्वरूप हैं तो विशेष दृष्टि से सत् एक एक पदार्थ रूप है। सामान्य से सत् अनन्त पर्याय स्वरूप है तो विशेष दृष्टि से सत् एक पर्यायस्वरूप है आदि। इस तरह पदार्थ जो है सो ही है, किन्तु निरूपण का व्यवहार होने पर एक एक दृष्टि का मत ही प्रमाण

निर्मित होता है, अतः सत् सप्रतिपक्ष होता है ।

अप्रतिपक्षम् १ । ७

किन्तु यह सत् निमित्त दृष्टि से निमित्त गुण व परिस्थिति मय है उस दृष्टि से उसका प्रतिपक्ष कोई नहीं है अन्यथा सत् निरूपण उन्नतसत् ज्ञानावगा । इस कारण जो गुण निमित्त दृष्टिसे निमित्त स्वरूप है वह उस ही स्वरूप है, उसका विरुद्ध क्या कोई नहीं है अतः सत् अप्रतिपक्ष अर्थात् प्रतिपक्षरहित है ।

अतत् १ । ८

पदार्थ द्रव्य दृष्टि से तत्स्वरूप है, क्योंकि द्रव्य वहीमा यह अतत् ज्ञान तत् है, किन्तु जब परिणामन की मुख्यतासे देय तत् प्रतिममय यह बात चलती रहती कि वह नहीं है यह नहीं है, अर्थात् अतत् है । जैसे कि स्थूल पर्यायसूत्र प्राप्तम दखे आत्मा मनुष्य देव आदि पर्यायसूत्र परिणामता है तत् मनुष्य त्वेव नहीं है, त्वेव अयं नहीं है आत्मा ।

असत् १ । ९

यही सत् सामान्य विशेषात्मक होने से सामान्य स्वरूप की दृष्टि से तो सत् है वह विशेष स्वरूप की दृष्टि से असत् है । महात्मना आत्मात्तर सत्ता की अपक्षा असत् है, आत्मात्तर सत्ता सत्तात्ता की अपक्षा असत् है, क्योंकि ऐसा

प्रत्यय न हा तो सामान्य विशेष वरूप रहित हा जाव गे ।
अतः सत् अमन् स्वरूप भी है ।

अनेकम् १ । १०

सत् आधार दृष्टि से दरा तो सत् अण्ड सर्व एर
नहा है, किंतु प्रत्येक एर है, अथान् जितने द्रव्य हैं उतने
मत्स्वरूप पार्थ है । एक द्रव्य और अन्य द्रव्य क अ त
राल में सत् कुछ नहा है । आनातर मत्ता वाली दृष्टि यह
ही है । यदि सत् सर्वथा एर माना नाय तो जो एक मन्म
परिणमन है वही मन्मत्र परिणमन हो जायगा सो तो प्रत्यक्ष
विरुद्ध है । किंतु जितना जो द्रव्य है उतना वह सत् है
एमी प्रतीति न कश्च भी विरुद्ध नहा है । जैसे आत्मा एक
एक अण्ड सत् है तो आ माग जो मुख दु र विचारआदि
परिणमन होता है वह मन्मप्रदशी होता है तथा उस आत्मा
से वाच्य नहीं होता । परमाणु में भा यहा व्यवस्था है तो उस
में रूपादि परिणमन होता है वह समस्त एरप्रदशी पर
माणुमें होता है । अतः परिणमन विभिन्न व विभिन्नजातीय
होने पर द्रव्य अनेक हैं इमी कारण सत् भी अनेक हैं ।

क्षणिकम् १ । ११

वह सत् क्षणिक है । यहा पर्याय दृष्टि से मुख्यता है
प्रतिक्षण पपाग अन्य ० होती है, एर क्षण की

द्वितीयचरण म नहीं है, अतः पयाय दृष्टि से देखा गया सर्व चरण है। क्योंकि परिणामन चरण न मानने से वस्तु मर्त्या अपरिणामी हो जायगा और वस्तु अपरिणामी होने पर साग व्यवहार और अथत्रियाकारित्व लुप्त होजायगा।

अभिभक्तम् १।१२

प्रत्येक सद्भूत द्रव्य अपनी शक्तियों से मर्त्काल अभिभक्त है, अभिन्न है। सर्व शक्तिया का समूह एक पिण्ड पदार्थ है अथवा पदार्थ मीजितनी व्यक्तियाह उतनी शक्तिया ह क्योंकि शक्तिके बिना व्यक्ति हा जाय तब किसी भी पदार्थ में अव्यवस्थित (उत्पन्ना) व्यक्तिया होने लगती। अतः पदार्थ अनन्त शक्तिमय है और उन समस्त अनन्त शक्तिया से अभिभक्त तन्मय है।

विभक्तम् १।१३

सद्भूत पदार्थ अपनी शक्तिया से पूर्ण तन्मय है तो प्रत्येक अन्य पदार्थों से पूरा पृथक् भी है। ये दोनों बात परस्पर में साधिका ह। यदि पदार्थ अपनी शक्तियों से तन्मयता न रहा तब अन्यपदार्थ का अ यतामान भी अमिद्ध हो जायगा। तथा यदि प्रत्येक पदार्थ अन्य पदार्थों से जुटा न होवे तो अपना शक्तिया में तन्मयता को प्राप्त ही भरना है। वस्तु मी वस्तुता भी यही है कि

स्वरूप का उपादान और परम्पका अपोहन । अतः प्रत्येक मन् मद्भूत सब अन्य पदार्थों से विमुक्त है ।

अखण्डम् १ । १४

मन् अखण्ड है । जो मण्डल खण्ड स्वरूप है वह सत् नही है, मितु मन् की पर्यायमात्र है अथवा प्रलापमात्र है । मन् अखण्डहा होता है । जैसे एक आमा अखण्ड है, एक परमाणु अखण्ड है, धर्मद्रव्य अखण्ड है, अधर्मद्रव्य अखण्ड है, आशाशत्रव्य अखण्ड है व एक कालाण अखण्ड है । अखण्ड विना द्रव्य नहीं ठहर सकता ।

साशम् १ । १५

वह अखण्ड प्रत्येक सत् गुणवृष्टि अथवा पर्यायवृष्टि से अशमहित है । पर्यायवृष्टि से एक अश का भिन्न भिन्न काल में अभार है । गुणवृष्टि से एक एक अश का अन्य अशा में स्वभाव की भिन्नता है । गुणवृष्टि से अश तिर्यग्रूप है, पर्यायवृष्टि से अश उर्ध्वतारूप है । यह साशपता अपनी सीमा में है और अखण्डपना भी अपनी सीमा में है और ऐसा साशपना और अखण्डपना परस्पर एक दूसरे का साधक है ।

स्वपरिणतम् १ । १६

प्रत्येक सत् अपने में ही परिणत है । प्रत्येक अर्थ द्रव्य क्षेत्र काल भावस्वरूप है, और अर्थ अपने ही द्रव्य

म, क्षेत्र म, काल म, भास म परिणमता है । पदार्थ का व्यक्तिया पदार्थ की शक्तियों का परिणमन है । पदार्थ स्वयं ममग्र तो द्रव्य है उमक प्रदश क्षेत्र है उमकी परिणति ज्ञान है, जिम ० शक्ति की परिणति ज्ञान है वह भास है । पदार्थ की परिणति पदार्थ की निचतुष्टय का भीमा म ही हाती है, अतः पदार्थ स्वपरिणत है ।

अस्वापरिणतम् ? १७

प्रत्येक सत् अपने से भिन्न अन्य सत् का प्रव्याप्ति चतुष्टय म परिणत नहीं हाता है । ऐसी ही अनाति से स्वतः व्यपस्था है । यदि कोई पदार्थ अन्य पदार्थ की परिणति से परिणमे अथवा अन्य की शक्तिया म परिणमन न विवहित पदार्थही रहेगा न अन्य पदार्थ ही रहगे । अतः सत् अस्वापरिणत है अर्थात् जो स्व नहा है एम अन्य सर्व पदार्थों म परिणत नहीं होता है । यहाँ भी यही प्रक्रिया जानना चाहिये कि स्वचतुष्टय का परिणमन के नियम से परचतुष्टय की अपरिणति भिन्न हाती है और परचतुष्टय की अपरिणति का नियम से स्वचतुष्टय का परिणति भिन्न हाती है ।

स्वभाववत् ? । १८

प्रत्येक सत् स्वभाववत् है । अपने अभावधारण गुरु बिना सत् ही क्या रहेगा ! व नियम लिये मन् है ?

अत जीव ही, पुद्गल ही, आकाश आदि ही सर्व मत्र अपना स्वभाव रखते हैं । वह स्वभाव स्वयं अनादि से है । यद्वा तर्क का कोई विषय नहीं है । जीव का स्वभाव चैतन्य है, पुद्गल का स्वभाव मृतत्व है आदि । स्वभाव सदा स्वभाव रहता है स्वभाव का परिवर्तन नहीं होता है । इस प्रकार प्रत्येक मत्र स्वभाववान् है ।

अस्वाभावकम् १ । १६

प्रत्येक सत्त्व से भिन्न अस्व अर्थात् समस्त पर क स्वभाव से पृथक् है । सनातीय द्रव्य जैसे जीव जीव, इन में भी एक जीव सत्त्व का स्वभाव अन्य जीव सत्त्व में नहा होता और विनातीय द्रव्य जैसे जीव अणु इन में भी एक का स्वभाव अन्य में नहीं होता है । तभी तो ये द्रव्य रहेंगे अथवा कोई व्यवस्था नहा, और अव्यवस्था होने पर पदार्थ का अभाव ही जायेगा ।

ज्ञानमात्रम् १ । २०

जो कुछ भी यद्वा प्रत्यय किया गया है, वह सब निरक ज्ञानमात्र है । अथवा इस सत्त्व से अपनी अग्रान्तरसत्त्वा के विशेषों को परस्पर छुटने पर यही अन्तिम निश्चय है कि म ज्ञानमात्र है । यह सारा ज्ञान पदार्थों का नहीं किन्तु मेरा है । एक द्रव्य के गुणा की विषया अन्य द्रव्य में नहीं

मेरा है। एक द्रव्य के गुणों की क्रिया अन्य द्रव्य में नहीं होती, तब गुण भी मेरा अभिन्न स्वभाव है उसकी क्रिया मुझ में ही हो सकती है। अतः यह मात्र प्रथम तब मात्र है।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

तदहम् २ । १

अब सब सत् में मारभूत अर्थ आमा है और आमात्रा में भी स्व स्व के लिये माग्भूत है। स्व के लिये स्व ही है। अतः वह सब सार स्वरूपस में है। अथवा सबमत् ही विगणणासी परीक्षा द्वारा हुआ प्रत्यय ज्ञानमात्र है और वह ज्ञानमात्र में है।

अब इस ही में ही विशेषताग बतलाने के लिये अब कहेंगे जिनमें प्रथम सब कहते हैं—

चित् २ । २

वह में चित्स्वरूप है, प्रतिभामन ही नाम चेतना है, सा यह मेरा अनादि अनन्त स्वतन्त्र मिद्ध अभिन्न स्वभाव है। मैं चेतने वाला हूँ। मैं परमो चेतने वाला हूँ—ज्यरहारस। मैं अपने आपको चेतने वाला हूँ—निश्चय स। कृता क्रम ही भेद वस्तु में नहीं है, अतः मैं मात्र चेतने वाला हूँ—पद्म निश्चय से। इस प्रकार मैं चित्स्वरूप हूँ।

जीव २।४

यह म चेतन चीवत्व शक्ति की दृष्टि से जीव हू ।
 चैतन्यमात्र भावका धारण करनेवाला शक्तिरा नाम
 चीवत्वशक्ति है, उम चैतन्यप्राण करि जो चीव सो जीव है ।
 यद्यपि इन्द्रिय प्राण, रज प्राण आयु व रसापोच्छ्वास करि
 हा जीवने रा व्यरगर है परंतु वह मर दिना शक्ति प्राण
 है और जीव रहता अनादि अनत, अत चैतन्य प्राण
 र जावने से निश्चय स यह जीव है ।

आत्मा २।५

वह म आत्मा हू । यतति अणोति व्याप्नोति
 जानाति इति आ मा जो नान गुण ररके सर्व निरय म
 व्यापक हो वह आ मा है । यद्यपि चानरी एमी व्यापकता
 निमलपपाय म है, तथापि शक्ति ता मर्रटा ऐगी ही तैपार
 गहा रूगती है, अत मरे आमा भी इमी शक्ति से आत्मा
 है । एसा ही यह म आमा हू ।

ब्रह्म २।६

यह म ब्रह्म हू । जो अपन गुणा रर बद्धनशान हो
 यह ब्रह्म है । यह म ज्ञानादि गुणा र अनत विनाम र
 स्वभाव को लिय हू । यद्यपि कषायपरिणामों से इसका
 निम्कार है, तथापि स्वभाव मर्रटा है, इसी कारण धोदा

त्रिमी परिणमनका निमित्त करक अन्य पदार्थों में जो
 जानत हो जाय उमका रक्षा रह गिया जाता है । इसी
 तरह चय पयाय में शुद्धता हो तब मैं अपने शुद्ध स्वभाव
 परिणति का रता हूँ । और यही अपने योग्य ज्ञान
 विभाग आदि का रता हूँ । तथा राग द्वेष का भी,
 परिणमन हान से रता हूँ । परन्तु व्यग्रहारण्य से
 रक्ष का व गरीर का रता हूँ ।

भोक्ता २ । १०

वह मैं आत्मा भोक्ता हूँ । जितन भी द्रव्य ह व
 मय अपनी अरस्था में रता हूँ, अत मैं भी द्रव्य भोक्ता
 हूँ, परन्तु यहाँ जेतन का प्रसंग हानि से विशपतया रणन
 रत ह अपनी रिया का फल अपने में ही निरूपयत
 हा पाता हूँ अत निरूपणय से तो मैं अपने अन्त नान
 दर्शन मुख आदि का भोक्ता हूँ (चय पयाय में निर्दलता
 आवे) । इस समय प्रयतमान ज्ञान कुर आदि का भोक्ता
 हूँ । तथा रागादि का भी परिणमन हानि से रागादि का
 भोक्ता हूँ । व्यग्रहारण्य से जिन वाय वस्तुआ का
 निमित्तमात्र पाकर विभाय हात हूँ उनका फल का भोक्ता
 कहा जाता हूँ ।

अकर्ता २ । ११

वह मैं आत्मा अकर्ता हूँ । परम शुद्ध निरूपणय

आमाक अनादि अनत सामान्यस्वभावके ग्रहण करता है।
इस नय की दृष्टि में भेद भी नहीं है फिर कर्ता का प्रश्न
ही नहीं है। इस स्वभाव से म अनादि अनत एक स्वभाव
रूप रहता है अतः अकता है।

अभोक्ता २।१२

अकता की भाँति म अभोक्ता है। भोगने वाला
पपाय हाता है। मात्र स्वभाव के स्वरूप में भोगने की
अशुद्धता नहीं। अतः परमशुद्ध निश्चयनयसे म अभोक्ता है

विभु, २।१३

वह म आत्मा व्यापक है। जैसे ज्ञानगुणकी अपेक्षा
में ज्ञानमय है इसी तरह अन्य गुणों की दृष्टि में म उस
उस गुणमय है। प्रत्येक गुण आत्मा में व्यापक है अतः
गुण भी गुणों में व्यापते हैं। जैसे सूक्ष्म ज्ञान में है,
दर्शनम है सुखम है आदि। इस तरह म आत्मा विभु
है। मेरे ज्ञान का स्वभाव भी सर्व का जानने का है। इस
दृष्टि से भी म विभु है।

अव्यापी २।१४

म अव्यापी है। म प्रत्येक शक्तिमय है। एक शक्ति का
स्वरूप अन्य शक्ति का नहीं है। अतः म अव्यापी है तथा

म, मात्र अपने प्रदेशोमें हा ह अनत ज्ञान अनतमुख आत्ति शुद्ध परिष्कृत क काल में भी मात्र अपने प्रदेशों में ह । स्वक्षेत्र से बाहर अव्यापी ह । स्वक्षेत्र से बाहर न भरा द्रव्य है, न गुण है, न परिणाम है, न प्रभाव है अन में अव्यापी ह ।

स्रष्टा २ । १५

यह मैं आमा स्रष्टा ह । अपनी ममस्त परिणतियां रचना करने वाला मैं ही ह । मैं चेतन ह और चैतन्य स्वरूप स्वमात्र की दृष्टि से वह सदृश होने का कारण ह ह और चैतन्य स्रष्टा है अत नयनद्वियों का न जाननेवाये एक चेतन परमात्मा का स्रष्टा रहने लगे ह । परंतु मत्पना यह है कि सभी चेतन अपनी अपनी परिणतियोंक स्रष्टा हैं म अपनी परियों का स्रष्टा ह ।

अस्रष्टा २ । १६

यह मैं अस्रष्टा ह । मैं ध्रुव अनात्ति अनत ह । जो ध्रुव तत्त्व है वह परिवर्तन रहित होता है । जहां परिवर्तन नहा है वह न रचा जाता है और न रचने वाला होता है । मैं चैतन्य सामान्यस्वरूप ह अत मैं अस्रष्टा ह । यहां परमशुद्ध निरचयनय क विषयभूत अनात्ति अनत अहतुन चैतन्यस्वभावा की सुगुणता से निरूपण है ।

शुद्ध. २ । १७

उह म शुद्ध ह । जो ॐ शब्द से वाच्य तत् शब्द से
 नय मन् म माग्भूत चैतन्यस्वरूप म ह । वह शुद्ध ह
 अनात्ति से अनत शाल तर स्वरूप मा श्लने वाला नहा
 ह तथा जो म मव पर्यायो म जाता हुआ भी निर्मो एव
 पयायस्व नहा हाना उह म शुद्ध ह, और ऐसा शुद्ध जो
 शुद्ध अशुद्ध की मत्ता मात्र को भी सहन नहा कर सस्ता,
 शुद्ध ह ।

अशुद्धः २ । १८

यद्यपि म प्रुव चेतन अनात्ति अनत द्रव्य दृष्टिसे शुद्ध
 हू तथापि पर्याय रहित नहीं हू क्यकि परिणाम रहित
 रस्तु मा अभाव होता है । जो पयाय की सहिता है वही
 अशुद्धि है अथवा वर्तमान मसार पयाय की दृष्टि से तो
 अशुद्ध रागादिभाव मा मम्पर्क होने से तो अशुद्ध पयाय
 रूप हैं । अथवा मुक्त में अनेक शक्तियाँ हैं निन अनेक
 शक्तियों के सम्बन्धरूप दृष्टि से अशुद्ध हू ।

शक्तिमयम् २ । १९

म शक्तिमय ह । अनतशक्तियों से रहित मैं शुद्ध नहीं

है। अथवा मुझमें जो अनेक शक्तियाँ हैं उनमें से यदि एक भी शक्ति पृथक् हा जाय तो न शेष शक्तियाँ रह सकती हैं और न मेरा ही अस्तित्व है। एसी बात होने पर भी शक्तियाँ अपनी कोई पृथक् मत्ता नहीं रखती किन्तु मैं अनेक शक्तियों का अभेदस्वरूप मैं हूँ। अतः मैं शक्तिमय हूँ।

ज्ञानमात्रम् २।२०

उपयुक्त प्रकार से कथित वह मैं ज्ञानमात्र हूँ। मग्न्यमाधारण स्वभाव जान है जिससे अन्य सब से पृथक्त्वकी व्यवस्था होती है। मैं अपनी शक्तियों की या परिणतियों की भी व्यवस्था, मात्र ज्ञान (जानना) ही करता हूँ। अपने अंतरंग कार्य पर पहुँच कर यही पाता हूँ कि मैं मात्र जानता हूँ। अतः मैं ज्ञानमात्र हूँ।

अथ तृतीयोऽध्यायः

अहम् ३।१

अपने आपमें ज्ञानमात्र अनुभव करने पर मात्र "म" का प्रतिभास अनुभव होता है। इस अनुभव में सर्व शक्तिमय आत्मा का अनुभव होने पर भा भेद रूप ग्रहण नहीं है। 'अहं' क अनुभव से पहिले शुद्धा भा रा

साक्षी पूर्ण सोऽह का अनुभव हाता था और सोऽह क अनुभव से पहिले शुद्धात्मा क प्रात 'दासोऽह' का शुभभाव हाता था । अब, ज्ञानमात्र अनुभव पहुचने पर सर्व भेद का प्रत्यय दूर हो गया और अभेद स्वरूप स्वयं का अनुभव होने लगा । उर्मी अनुभव क सम्यन्ध म बुद्धि छत्र कहत हैं-

आनन्द ३ । २

उम स्वानुभव में आनन्द- निरादुलता का परिणामन है अतः म आनन्द मात्र हूँ । स्वानुभव में स्वाभाविक आनन्द का परिणामन है । उहा आनन्द का भोक्ता है । उम व्यक्त भाव की मुक्तता से म आनन्दस्वरूप हूँ ।

निर्विकल्प ३ । ३

म सर्व विकल्पोसे रहित हूँ । विकल्प मरा स्वभाव नहा, क्योंकि विकल्प औपाधिक है । केवल ज्ञातारा परिणति मोहचोभ क सकल्प विकल्प रहित हैं । ज्ञान मात्रा अनुभव सहन ही सर्व विकल्पशून्य हैं । स्वभाव से म सर्व विकल्प शून्य हूँ । विकल्प अध्रुव है, म ध्रुव हूँ । अतः निर्विकल्प हूँ ।

निष्कर्मा ३ । ४

म कर्म-प्रिया रहित हूँ । कर्म पुट्गल द्रव्य हैं, उनका

अस्मिन् उन म है, उम से तो रहित हू ही, किन्तु रम
 को निमित्त पाकर तो राग द्वेष आदि रम क्रिया होते हैं,
 यह भी मर स्वभाव नहा है । तथा जो ज्ञान क्रिया है, न
 ज्ञानन मात्र है, अनाद्वैतस्वरूप है, अग्रनिपद है, अपृथक्
 भूत है निरूपधि है अतः रम मत्ता ही प्राप्त नहा है । म
 तो मात्र जाता हू अतः निष्फला ह ।

निष्कल ३ । ५

म शरीर रहित ह । शरीर अनेक पुद्गलाणुओं क
 र्मण्य का समूह है, वह अचेतन पर द्रव्य है, उमसे विप
 रीत स्वभाव वाला अत्यन्ताभाव वाला म चेतननिन अमूर्त
 चैतन्यादि शक्तिमय ह । शरीर का न मैं हूँ और न शरीर
 मरा है, न या न होगा । शरीर म नहीं, मैं शरीर नहा
 हूँ । मैं चैतन्यमय अमाधारण द्रव्य शरीर से पृथग्भूत
 वस्तु हूँ । अतः मैं निष्फला हूँ ।

निर्विश्व ३ । ६

म विश्वरहित हू । मेर से अतिरिक्त सारा विश्व
 मुझ से अत्यन्ताभाव वाला है । सर्वविश्वसे मैं जुटा
 तत्त्व हूँ । मैं मैं हूँ, विश्व विश्व है । मेर शुद्ध स्वभाव में
 सार विश्व क आकार प्रतिभासत हैं, तथापि विश्व का
 ज्ञान हान पर भी समस्त विश्व से मैं जुदा हूँ । केवल क

अनुभव स्वरूप ह ।

दिव्य ३ । ७

म दिव्य ह । ज्योतिर्मय ह । यह ज्योति चिस्वरूप
अमूर्त है । म अपनेम ब्रीडा करताहूँ, प्रतिभामरूप
रहता हूँ, प्रिहार रगता रहता हूँ अत म दिव्य ह ।
अथवा म ढवम्बरूप ह ।

मद्वत्तिदेवी ३ । ८

मेरी ना परिणति है वही वस्तु वृत्ति देवी है । म
दिव्य हूँ मो ढवम्बरूप हूँ तब मेरा तो परिणतिहै वह ढवी
है यह ढवी परिणतिरानमे मर्वप्रदश म हैं । लोकरमे श्री
अधाङ्गिना रहा जाती है । शिवरा तो अधाङ्ग श्री
म्बरूप था गेमी लारु ने प्रमिद्धि का । किन्तु यहा तो
मेरी तो परिणति ढवी है वह तो सर्वांगमय उमराल म
है । अर कुछ देवी शब्दो द्वारा परिणति का विणोदना
रुहत है ।

दुर्गा ३ । ९

मेरा निर स्वानुभवपरिणति ही वस्तुत दुर्गा है ।
दुर्गा का अर्थ है द गेन गम्यते प्राप्यत या सा दुर्गा । जो
ठठिनाई से पाई जाव वह दुर्गा है । ममार मे अमत
पुण नीम का रिषय रूपाय श्री परिणति तो सुलभ रहा

किन्तु मर्ष विरह्य से रहित आनन्दमय नान मात्र परिणति
अमुलम रही, यही स्वानुभूति दुगा है ।

शक्ति ३ । १०

मेरी स्वामाप्ति परिणति ही शक्ति ढकी है । शास्वत
पल्लाम शक्यते अनया इति शक्ति । जिनके द्वारा
अग्निनाशी मगल श्रष्ट पल पालिया जा मके वह
शक्ति है अथवा मोहानीन् जेतु शक्यते अनया इति
शक्ति । जिनसे मोहान्द्रि नीत नाने वह शक्ति है । वह
स्वानुभव रूप निर्विरह्य दशा द्वारा ही प्राप्य है । अत
मेरी स्वमात्र परिणति ही शक्ति है ।

चण्डी ३ । ११

मेरी स्वानुभूति ही चण्डीनेवी है । चण्डतेदु प्यति भक्षयति
विनाशयति रागादि शत्रून् इति चण्डी, जो रागादि
शत्रुओं का नष्ट कर वह चण्डी है । ऐसा प्रताप निन
अनादि अत अस्तुव चैतन्य स्वमात्र की अनुभूति म
है । अथवा चण्डयति ज्वलयति हृद्विररोति निनस्वमात्र
मा चण्डी । इस स्वानुभूति म ये दोनों ही विशेषताये
है कि अपने स्वमात्र मा विकाम करती है और विभाव
रां विनाश करती है ।

मुण्डी ३ । १२

यही चैतन्यस्वभावाकी अनुभूति ही मुएटी देवी है। मुएडते सुएटयति रागाग्नीन् द्रव्यकमाणि सवाधि मलानि इति मुएटी। जो रागादिर भावकर्म और पापा परशास्त्रि द्रव्यकर्म व अन्य समस्त आधि व्याधिउपाधि का म्बटित करताहै, भेदतीहै, नष्ट करती है, वह मुएडी है। वह मेरी स्वाभाविक परिणति ही है।

चन्द्रघण्टा ३ । १३

मेरी यह स्वानुभूति परिणति ही चन्द्र घण्टा है। अमृतनाराण चन्द्र घण्टयति इति चन्द्रघण्टा। जो अमृतके रहाने में चन्द्रमा को भी उल्लघन करद वह परिणति चन्द्र घण्टा है। अमृत वास्तवम प्रतिमायमात्र परिणमन है। वह ही अमर है, अमिनाशी है, तत्त्वम्य-वी आनन्द प्रदान म ममर्थ स्वानुभूति है अत स्वानुभूति चन्द्रघण्टा देवी है। अथवा चद्र घण्ट्यात स्पद्धते शातिदानेन इति चन्द्रघण्टा, जो शाति प्रदान से चन्द्रकी स्पद्धा करे। चद्र लौकिक ज्ञान्त की अपक्षा से है, जो सर्व प्रकार शाति प्रदान कर वह अनुभूति ही तो है।

भद्रकाली ३ । १४

भद्र कन्याण कनपति प्रेरयति इति भद्रकाली। जो भद्र अवात् कन्याणमप शुद्ध ज्ञानपत्की प्रेरणा

करती है वह भद्रमाली है। वह स्वानुभूति ही है स्वानुभूति से कल्याणपद पानेकी प्रेरणा मिलती है और कल्याण पद प्राप्त कर लिया जाता है। अतः यह स्वानुभूति परिणति अथवा ज्ञानपरिणति भद्रमाली दधी है।

अम्बा ३ । १५

अम्बते सूते जनपति स्वकीय सा अम्बा, जो शुद्ध स्वकीय परिणमनका पैदा कर वह अम्बा कहलाती है। यह ज्ञान परिणति ही है। ज्ञानपरिणति ही उत्तरात्तर शुद्ध ज्ञान के विक्रम का करती रहती है। अम्बा माता का रहते हैं, माताका अर्थ है मानेगाली परिमाण मे लानेगाला ज्ञानपरिणति से आत्मा का व जगत का परिमाण भी हाता है अतः ज्ञानपरिणति अम्बा है। अम्बा का अर्थ रक्षा करने वाली भी है, जो ज्ञानपरिणति ही आत्मा की रक्षा करने वाली है। अतः स्वानुभूति ज्ञानपरिणति अम्बा है। वह मेरी ही तो शक्ति है।

सरस्वती ३ । १६

सर प्रमरण यस्या सा सरस्वती। जिमका विस्तार हो वह सरस्वती है, ज्ञानपरिणति का लोमलोम म विस्तार है। मेरी ज्ञानपरिणति ही सरस्वती है। लोमम भी विद्याका स्वरूप सरस्वती की मूर्ति म मानते हैं और ४ हाथ जिम

म चाणा पुम्तर माना आन्ति हैं मानते हैं। इस व्यवहारका प्रयोजन व्यवहार स्वरूप यह है कि ज्ञान संपादनके मार्ग ४ अनुयोगहं, प्रमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, अव्यानुयोग। हाथ म उस्तु लिय है वह बाह्य साधन का संकेत है। मरपे महान् प्रमार ज्ञान का है सो यह ज्ञानपरिणति ही मरस्यती है।

भगवती ३ । १७

मग ज्ञान ऐश्य वा अस्या अस्तीति भगवती ।
निसके ज्ञान, ऐश्य हो वह भगवती है, यह भी ज्ञानपरिणति ही है। लोफ म रहते हैं—भगवती रक्षा करें। वह केइ भगवान की स्त्री नहा है, किन्तु भगवान परमात्मा की परिणति है। वह ज्ञानपरिणति है। वास्तव में ज्ञानपरिणति ही आत्मा की रक्षा करने वाली है, अतः ज्ञानपरिणति भगवती है।

निराकृतः ३ । १८

उपर्युक्त परिणतिया जिमकी ह एमा यह म निराकृत ह । ज्ञानपरिणति म ही निराकृत आत्मा होता है। निज ज्ञान से जाय इतर पर दृष्टि पट्ट चन ले यात्मा निराकृत नहा रह पाता है। यह निराकृतता मेरा स्वभाव ही है। यद्यपि वह वर्तमान म तिरस्कृत है तथापि जिन कारणों से

तिरस्कृत हैं उनके हरने पर जीव निर्भीध निराकुल हा ही जाता है। ऐसी अज्ञान परिणति से भिन्न मैं निराकुल हूँ ।

शिवमयम् ३ । १६

उपर्युक्त परिणतियो वाला मैं स्वयं शिवमय हूँ । शिव कल्याण को कहते हैं, सुखका कहते हैं । मैं स्वयं शिवमय-सुखमय हूँ, स्वभाव हा ऐसा है । अपने से भिन्न मरा शिव अन्य काई नहीं हैं । मैं स्वयं शिवमय हूँ ।

ज्ञानमात्रम् ३ । २०

ऐसा मैं सर्व विशेषणों के द्वारा प्रतीत स्वयं ज्ञानमात्र हूँ, क्योंकि परीक्षण के बाद मुझमें अन्य कुछ नहा प्रतीत हुआ । केवल ज्ञानमात्र हूँ ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रश्नु ४ । १

प्रश्नु का प्रकार से है, एक वर्तमान निःस्वयं दूसरा पयायशुद्ध । मेरा अनादि अनन्त चैतन्य प्रश्नु है वह प्रकृत पयायरूप से होने का मटा स्वभाव रखता है । पयायशुद्ध चैतन्यदात्र प्रश्नु है, वह अनन्त शक्तियों के अन्तत विकास

का प्राप्त हो चुका है । हमारा ध्येय पर्यायशुद्ध प्रभु का ज्ञानमय स्वरूप भी वर्तमान निवन्ध चैतन्य प्रभु का अनन्य उपयोग करना है । उस ही क विषयम इस अध्याय में ग्रहण ।

सर्वज्ञ ४ । २

पर्यायशुद्ध प्रभु व्यक्त सर्वज्ञ है और निवन्ध चैतन्य प्रभु ज्ञात सर्वज्ञ है । मनीष ज्ञानस्वरूप निवन्ध मय ज्ञान का उद्यत है । विषय स्थाय विभागा क व आवरणों क आगम ज्ञान पर मवल्ल ज्ञाने मे काड अन्तर नही रहता । एसा यह पर्यायशुद्ध प्रभु व्यक्त सर्वज्ञ है और यह मुख्य ज्ञात सर्वज्ञ का प्रतिच्छेद है ।

सर्वदर्शी ४ । ३

इस का प्रकार यह स्वयं सर्वदर्शी है । आ मा प्रति भास्यरूप है अत एव अन्तर्मुखा चैतना म सर्वदर्शिन्य स्वयं आ जाता है । पर्यायशुद्ध परमा मा व्यक्त सर्वदर्शी है और वर्तमान निवन्ध परमा मा चैतन्य ज्ञात सर्वदर्शी है ।

सन्ध्य ४ । ४

यह चैतन्य सन्ध्य है । कमल चैतन द्रव्य का हा

दग्धो तो उठ स्वच्छ गु + अच्छ = परद्र-यो के स्वभाव सम्पर्क से रहित करन अपने स्वभाव शक्तियों में वर्तमान निर्मल है ।

स्वविलास ४ । ५

यह चैतन्य प्रभु केवल स्व भा ही विलास करता है । अपने आपसी परिणतियाँ में इसका रमण है अथवा स्वभावतः स्वभाव का ही विलास करता है । अन्य से व्यत्यन्त रहित है । स्वनिशरी है ।

अकार्य ४ । ६

यह चैतन्य देव कार्य नही क्योकि अनादि निपन है प्रथमा इसका काइ कार्य नहीं क्योकि ध्रुव एवस्वभावी है

अकारण ४ । ७

यह चैतन्य प्रभु कारण नहीं और न इसका काइ कारण है । यह तो अनानि अनत स्वत सिद्ध प्रति भासक द्रव्य है ।

परिणामी ४ । ८

यह चैतन्य देव परिणाम भाव वाला है इसका मर्स्व भाव मात्र है । यह मूर्ति रहित है अथवा यह चैतन्य देव सर्वथा कृटस्ववत् नित्य नही है । पर्यायदृष्टि से

परिणमनशील है ।

अन्यून ४ । ९

यह चैतन्य प्रभु न्यूनता रहित है, स्वयं पूर्ण है ।
क्याहि अनादि मन् है । मर्ग शक्तियो म तन्मय है । यह
अधूरा नडा है जो निमी परकी सहायता से यह पूरा किया
जा सक । स्वयं परिपूर्ण है ।

अतिरिक्त ४ । १०

यह चैतन्य दब अतिरिक्तता से रहित है अर्थात्
कितना यह चैतन्य मन् है स्वयं, उमसे अतिरिक्त डम म
और कुछ नडा है । अ न द्रवर का काद गुण पयाय इन म
था न है न हागा । यह ता मडा अतिरिक्त स्वयं परि-
पूर्ण है ।

अपरिणामी ४ । ११

यह चैतन्य प्रभु अपरिणामी है । जो अनादि अनत
स्वभाव है यह नही रहता है । उमका परिवर्तन नडा है ।
सांभा य-स्वभाव दृष्टि से परिणमन नडा है । चैतन्य परम
पारिणामि शुद्ध अनादि अनत है अतः अपरिणामी है ।

निष्क्रिय ४ । १२

यह चैतन्य दब निष्क्रिय है । परम शुद्ध निरचयनय
से ता का क्रिया ही नडा है और पर्यायदृष्टि से क्रिया है

ता गुण परिणामन मात्र । अत यह चैतन्य प्रभु निष्क्रिय है
नियत ४ । १३

यह चैतन्य प्रभु नियत है । पर्यायशुद्ध चैतन्य दस
पर्यायों से नियत है जो पर्याय एक क्षण में है वही ही
सदृश पर्याय अनन्त काल तक होगी । निम्न चैतन्य प्रभु
अपने स्वभाव से नियत है । इस प्रकार म चैतन्य नियत है
अनन्तधर्मा ४ । १४

वह चैतन्य प्रभु अनन्तधर्म विशिष्ट है । मुक्त चैतन्य
म अस्तित्व वस्तुत्व याति साधारण धर्म और चैतन्यत्व
मुक्त याति असाधारण धर्म प्रतिसमय वर्तमान है । अत
यह चैतन्य प्रभु अनन्तधर्मविशिष्ट है ।

विरुद्धधर्मा ४ । १५

यह चैतन्य प्रभु विरुद्धधर्म वाला है । यदि द्रव्य
दृष्टि से नित्य है तो पर्यायदृष्टि से अनित्य है, स्वचतुष्टय
से मन् है तो परचतुष्टय से अमन् है । इस प्रकार सभावित
विरुद्ध धर्म भी दृष्टि अपेक्षासे पाये जाते हैं । अत
चैतन्य प्रभु विरुद्धधर्मा है ।

उपाय ४ । १६

यह चैतन्य प्रभु उपाय स्वरूप है । अनादि अनन्त
अहत्तुक चैतन्यभाव का उपयोग पर्याय निर्मलता का उपाय

है। अतः स्वयं यह चैतन्यस्वभाव उपाय स्वरूप सदा वर्तमान है। धर्म यही है, इमं च दृष्टि व्यग्रहार धर्म है निम्ना फल पर्यायनिर्मलता है। अतः चैतन्य देव उपाय भूत है।

उपेय ४। १७

यह चैतन्य प्रभु उपेय है। जगत के सर्व पदार्थ प्रत्यन्त भिन्न हैं अतः वही उपाय है नहीं, तथा परद्रव्य का निमित्त मात्र करके उत्पन्न हुए रागद्वेषादि विमान हैं—वही औपाधिक अहित है, अतः उपेय नहीं है। निज द्रव्यस्वभाव ही उपेय है जहां पूर्ण निराकुलता है। धर्म अरक निर्मल चैतन्यस्वभाव ही तो प्रकृत (पर्यायगत) करना है अतः यह चैतन्य प्रभु ही उपेय है।

योगिगम्यम् ४। १८

इस प्रकार चैतन्य तत्त्व जो उपाय उपेय स्वरूप है, वह योगिनना क द्वारा गम्य है, वे इस रहस्य को साक्षात् अनुभव करते हैं और अनुभव करते हैं, स्थिरता से। अतः चैतन्यतत्त्व योगिगम्य है।

स्वानुभाव्यम् ४। १९

यह चैतन्य तत्त्व जो योगिगम्य कहा गया है सो स्व के द्वारा ही अनुभव कर योग्य है—। योगिनन इमं

योग्य स्थिरता से अनुभव करते हैं किन्तु अन्य अमयत या सयतामयतआमा बुद्ध कम फल से अनुभव करते हैं। यद्यन्तु कोई किमीका अनुभव करा नहीं करता। अतः यह तत्त्व स्वानुभाव्य है।

ज्ञानमात्रम् ४ । २०

यह सर्व तत्त्व का विचार अतः म सुक्त द्वारा निर्दिष्ट चार अवस्था के उत्पन्न करता है तब यह सर्व ज्ञानमात्र ही वही प्रतिभासित होता है। वह अनुभव नानमात्र है। ज्ञानमात्र दशा ही पूर्ण निराबुल है। अतः तत्त्वज्ञान मात्र है।

अथ पंचमोऽध्यायः

सिद्ध. ५ । १

अत्र व्यक्त शुद्ध परमात्मा के विषय में प्रतिपादन करने के लिये छत्र कहे जाते हैं—भगवान् सिद्ध हैं। जो अग्निनाशी पद का प्राप्त हुए हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं। ये सिद्ध भगवान् पूर्ण निर्मल-द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म से रहित शुद्ध आत्मा सिद्ध हैं। ये शरीर रहित तथा निम दह का छोड़ कर मुक्त हुए हैं उन दह प्रमाण निम प्रणा म

प्रसिद्धित लोभादागम उपर विगनमान सिद्ध परमात्माहं ।

जिन ५ । २

शुद्ध निर्मल परमात्मा जिन है । जो कर्मों का जीते सो जिन है । आत्मगुणा का घात करने वाले कर्म चार हैं— वानापरण, दर्शनापरण, मोहनीय व अन्तराय । इन चार कर्मों का क्षय करने वाले परमात्मा जिन हैं । इसक बाद जेय गने हुए अधातिया कर्मों का क्षय करने वाले सिद्ध भी श्रुत्पत्त्यर्थ से जिन कहलाते हैं ।

हरि ५ । ३

परमात्मा हरि ह । जो पापों से, कर्ममात्र क्लेशों को हरले उसे हरि कहते हैं । शुद्ध आत्मा के पाप क्लेश नहीं ह अत परमात्मा हरि कहलाते हैं ।

हर ५ । ४

जो पापा के हरले वह हर है । परमात्मा अन्य भव्य जीवों के ध्यानके विषय हात है और उम निमित्त के पापक भव्यनीय अपने उपादान से निर्मलतास पाप क्लेशों से दूर हा लेते हैं । यहां निमित्त दृष्टि से शुद्ध आत्मा भक्ता क पापों क हरने वाले हैं अत परमात्मा हर है ।

ईश्वर ५ । ५

परमात्मा ईश्वर है । जो परम-उत्कृष्ट ऐश्वर्य करक

सहित हो वह ईश्वर कहलाता है । परमात्माके निज विशुद्ध परिणामन का ऐसा ऐश्वर्य है कि व अपने आप, अपने द्वारा, अपने म परका निमित्तमात्र भी रिय विना अनत स्वविलास म रहते हैं, अनत सुग्य वान के भोक्ता रहते हैं अत परमात्मा ईश्वर है ।

परमात्मा ५ । ६

शुद्ध आत्मा परमात्मा है । परमात्मा का अर्थ यह है परा या लक्ष्मी यत्र स परम परमरचामौ आत्मा चेति परमात्मा । जहा उत्कृष्ट लक्ष्मी अर्थात् विनासहा उसे परम कहत हैं, परम उत्कृष्ट आत्माका परमात्मा कहत हैं, परमात्मा सर्व दोष मलों से रहित हाने क कारण एवं अनत ज्ञानादि से परिपूर्ण व्यक्त हाने क कारण परमात्मा है ।

भगवान् ५ । ७

भग अर्थात् ज्ञान निमक है वह भगवान् है । वान तो सभी आत्माका के होता है फिर वानवान् का अभिप्राय क्या है ? उत्तर—उत्कृष्ट निर्मल ज्ञान का म्मस मन्त है । अथवा भग—एश्वर्यादि षट्गुणो क समूह का कहत हैं—वह निमक है वह भगवान् है । अत परमात्मा का भगवान् कहते हैं ।

शिव ५ । ८

परमात्मा शिव है । शिव का अर्थ कन्याण और सुग होता है । परमात्मा सर्वकलेश और क्लेश के साधनों से अचन्त दूर हो जाने के कारण कन्याणमय है, चित्तका आगमना के निमित्तसे अन्व भव्यजीव भी कन्याणमय हो लते हैं । परमात्मा अन्त सुखमय है क्योंकि सुग का अर्थ जो मोह है उसका सर्वथा क्षय हो गया है । अतः परमात्मा शिवस्वरूप है ।

ब्रह्मा ५ । ६

यह परमात्मा ब्रह्मा है । भगवान् ब्रह्मा स्वयं का निरन्तर मष्टि करत रहत हैं और प्रत्येक नाव की मृष्टि के इस प्रकार निमित्त हैं कि जो भाव जात उनका सुमुख होता है, उनका सुमष्टि हो जाती है, और जो चैतन्य प्रभु से विमुख होता है उनकी कुमष्टि हो जाती है । इस प्रकार परमात्मा ब्रह्मा ५ । इस ब्रह्मा के चित्त टै-यद्वेन काल भाव से चार मुख रूप है ।

विष्णु ५ । १०

यह परमात्मा विष्णु है । जो अथवा स्वभाव के लक्षणों का व्यापक उम विष्णु रहत है । चैतन्य प्रभु का सर्व गुण जानभावे हैं सा शुद्ध निर्मल अस्वभाव स्वभाव के विनाश का कुछ भी प्रतिषेध निमित्त न हो

मयने स ज्ञानभार रगि लोर अलोफ म व्यापन व प्रभु परमात्मा रहत हैं । अत परमात्मा सिष्णु है ।

बुद्ध ५ । ११

शुद्ध आत्मा बुद्ध है । पूर्णज्ञाना है । तान रा स्वभार ही प्रतिभासना है अत अरुण ही माग भिरन परमात्मा क जान म प्रतिभासता है । अत अनतनाना होने स परमात्मा बुद्ध है ।

राम ५ । १२

परमात्मा राम है । रमन्ते यागिन अस्मिन् इति राम जिम म यागीजन रमण कहत हैं उसे राम कहते हैं । भेद विज्ञान और चैत य स्वभार का परिचय होने से पर द्रव्या से हट कर निम निन चैतन्य भार मे ही योगीजन रमण रहत है वह विशुद्ध चैतन्य परमात्मा है । अत परमात्मा राम है ।

ईश ५ । १३

परमात्मा ईश हैं, स्वामी हैं, समर्थ ह । ससार भयभीत आमाओं का मात्र शुद्ध आत्मा का आराधन ही शरण हैं । अत शुद्ध आत्मा ही उनके स्वामी हैं और आराधनन साधारण जनों क लौकिक शरण है । अत साधारणजनों के, आराधक अ तरात्मा शरण है । अत

श्यामी के श्यामा भी हाने से परमात्मा इश है ।
अथवा अपने शुद्धबैभवेके पूर्ण श्यामी तथा अपना
अनसिद्धन निगकुल पण्डितिया म गमर्थ हान स परमात्मा
इश है ।

सनातन ५ । १४

परमात्मा सनातन है । परमात्मा हान स थापिष्ठा
निमा एक नियत निमसे नहीं यला, यह निभति अनादि
परम्परासे है । अथवा मरे आमाथ्योम निगत्मान् चैतन्य
प्रभु की निमी दिन गयना नहा हु वह यनादि अन्त
है । अत परमात्मा सनातन है ।

परमेष्ठी ५ । १५

परमात्मा परमेष्ठी है । परम-उत्कृष्ट पर म स्थित
नेन वाले के परमेष्ठी कहत है । अतत विमान्त र पूर्ण
निर्मल निदाप स्थिति स उत्कृष्ट, जगत म अथ बुद्ध नहा
है, एसे उत्कृष्ट पर म स्थित परमात्मा परमेष्ठी है ।

शम्भु ५ । १६

परमात्मा शम्भु है । स कहिये मुख निमसे द्रष्ट
हा वह शम्भु है । निर्मल आ मा क सुख गुण से ही सुख
स शक्ति हाती है, तथा शुद्ध सुखमय परमात्मा क
आराधन रूप कलमयभाय क अविनाशारी सुख स विनाय

हाता है। अतः परमात्मा शम्भु है।

मुक्तः ५ । १७

परमात्मा मुक्त है। तिन उधना म पराधीनम् यह ममार दृष्टिगोचर हाता है, उन व्यक्त एव अनेक अव्यक्त ममस्त उधना स मुक्त शुद्ध आत्मा हात है। मुक्त विशेषण से यह विशेष बात जाननी कि परमात्मा भी पूर्ण पूर्ण उधना से मुक्त होकर परमात्मा हुए है। ये सभी ममार म नहा उधत मन्त्रा निर्मल और अनत सुर्गी आति रहते हैं।

अर्हन् ५ । १८

परमात्मा अर्हन् है। अर्ह पूजापा धातु से अर्हत् शब्द बना है जिमका अर्थ पूज्य है। शाश्वत सुखमय अनतवान प्रशिष्ट निदाप परमात्मा ही विवकी ज्ञानी महता द्वारा पूज्य आराध्य हैं। अतः परमात्मा अर्हन् है।

स्वयम्भूः ५ । १९

परमात्मा स्वयम्भू है। शुद्ध आत्मा स्वय स्वय के स्वभाप रिफामके द्वारा स्वय के निराकुल स्वभाप विराम के लिये स्वय की एक परिणति से चल कर स्वय में परिपूर्ण रिफमित हुए हैं। अतः परमात्मा स्वयम्भू है।

ज्ञानमात्रम् ५ । २०

इमप्रकार उक्त विशेषणोंद्वारा प्रतीत यह शुद्ध पर-
मात्मा अन्तर्गूढदिशि निरिचत क्रियाद्वया वानमात्र है।
अथवा वानमात्रतत्त्व परमात्मा है। जहा ज्ञाता द्रष्टाके
अतिरिक्त मोद विस्मयना अत्रस्थान दुःखा यह आवृत्त
होनेसे स्वभाव निपरीत होनेसे परमात्मा नहा हो सजता
अत्र ज्ञानमात्र भाग परमात्मा है।

अथ षष्ठोऽध्यायः

अस्वादपेत्य ६।१

अत्र इम अध्याय म परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के उपा-
यभूत निवृत्ति प्रक्रिया की मुख्यता से सूत्र कहग निम्ने
प्रथम सूत्रका भाग यह है—कि चो स्व नहा है एसे समस्त
अस्व अथात् परपदार्थोंस हट करके। प्रवृत्ति रूप क्या
होना है इमका वर्णन सातवें अध्यायम हागा। यहा सूत्र
म असमाप्तिकी क्रिया इसलिये दी है कि यह सदा
लक्ष्य रह कि हटकर स्वरूपका प्राप्ति ही कार्य रहता है।
इम क्रियाका समाप्ति इस अध्यायक अन्तिम सूत्र
“ (अह) ज्ञानमात्र (अस्मि) ” म हुई है। अत्र यह
कहगे कि च पर क्या है चित्तसे इम हटना है। इस भाग
का इस क्रमसे वर्णन करेंगे कि उच्चरोत्तर सूत्राम अन्तरङ्ग
अन्तरङ्ग विषय आता रहे। उन सत्र परकीय अर्थ से दर

रहकर म ज्ञानमात्र ह ।

जडत् ६ । २

जड अचेतन वस्तुओंस म दूर होता हूँ । मग स्वभाष चैतन्य ह । निम चैतन्य नहो ह ऐमी वस्तुयें प्रकट प्रिकुद्ध और पृथक् ह । निगने म और व्यवहारम ये मव नडपदार्थ आरहे ह, इन्हेंसे मग निपटायें ननाट जा रहीह, अत सर्वप्रथम निवृत्तिके लिये जड का रूहा गया ह कि जडसे दूर रह कर म जानमात्र ह ।

बन्धो ६ । ३

बधु परिवार मित्रजनासे भी अलग हट कर ज्ञान मात्र आत्माको दखू । जड अचेतन बाध पर द्रव्य तो अत्यत पिनातीय थे, उनसे दूरहोनेकी भावना की । अत्र मनातीय परद्रव्य जो परिजनादिक ह व भी परद्रव्य ह और उनसे भी कुछ हित नहा ह क्योंकि द्रव्यमभाव ऐसा ह जो एक दूसरा का कुछ कर ही नहीं सकता । इम कारण म बधुजनासे भी उपयोग खीचता ह ।

देहात् ६ । ४

यह दह अचेतन ह, ममार अवस्था में आत्मा इसक एक क्षेत्राग्राहम बद्ध ह, अत यह दह बधुननों की अपक्षा भी आन्तरिक वस्तु ह । इस दह स भी जो निच

वस्तु बद्ध है, उसे उपयोग द्वारा देहसे हटाकर ज्ञानमात्र आ मात्रो दस्तु । अथवा द्वितीय सूत्रमें जो बंधुका विषय है वह परदेहसे सन्ध रखता है, क्योंकि मूढ आत्मा जैसे निजअधिष्ठित दहका आत्मा मानता है, वैसे पराधिष्ठित दहका बहुजन मानता है अतः परदेह से विरक्ति कराने के बाद निज देह का प्रसंग निया है।

शब्दात् ६ । ५

अथ देहसे उपरति फरक इन्द्रियविषयोः कथन करते हैं इन्द्रियोंक विषय ५ हैं स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द । ये विपरीतक्रमसे क्रमशः अधिक अधिक आमक्ति, स्पर्शन, एकीलोलता क कारण हैं । अतः शब्द से आन्तरिक वर्ण, वर्ण से आन्तरिक गन्ध, गन्ध से रस, रस से स्पर्श हैं । अतः प्रथम शब्द विषय से उपरतिक अर्थ सूत्र कहा है । म शब्दसे हट कर ज्ञान मात्रआत्माके दस्तु । क्योंकि शुभ अशुभ दोनों प्रकारक शब्द भिन्न पदार्थ ह, उनका विषय भाव क्षणिक औषा धिक है ।

रूपात् ६ । ६

म अप्राप्यकारी चक्षुइन्द्रियके विषयभूत रूपसे उपयोगसे हटाकर ज्ञानमात्रआत्माको देखू कल्पनासे माना गया शुभ अथवा अशुभ दोनों प्रकारका रूप परद्र

व्यीथ है उससे न मेरा सम्बन्ध है, न हित है, कवल रूपकी आश्रयमात्र करके स्थि गद्य प्रियन्पा से आमात्र मुग स्वभाव की विकृति है—आकुलता ही है। अत रूप स उपरत हाता हूँ ।

गन्धात् ६ । ७

म गधविषयसे हटकर ज्ञानमात्र आत्मा को दसू । रूपका प्रियकरने जाली नेत्र इन्द्रिय रूपसे, जिना भिडे ग्रहण करती है, किन्तु गन्ध अपने विषय करने जाली घ्राण द्रव्यन्द्रियसे भिडकर प्रिय होता है अत रूपसे गन्ध आन्तरिक विषय है । इम गधविषय और उमके ग्रहण का वाय साधनभूत घ्राणन्द्रियसे भिन्न ज्ञान मात्र निज आमतत्तका दसू ।

रसात् ६ । ८

रस से उपयोग हटाकर म ज्ञानमात्र आमात्र दसू । रसका प्रिय अर्थात् रमनेन्द्रियका विषयका प्रिय उक्त तीना विषयासे दुरर है तथा यह भिड कर हा क्या प्रत्युत रमनेन्द्रिय एव मूलक द्वारा रसमात्र पार्थ का चकार मकार विषय हाता है, आयक्ति का कारण है, अत गध से आन्तरिक रमविषय है । इम रमविषय आर इमके ग्रहण क वाय साधनभूत रमनेन्द्रिय स भिन्न

वानमात्र निव आम तत्र का दम् ।

स्पर्शात् ६ । ६

स्पर्शविषयत इह म "मै" ज्ञानमात्र आत्मा का दम् । मत्रे इन्द्रियविषयोम स्पर्शनद्रियता विषयस्पर्श अति प्रबल है रामसेवन म ही विषयम है । इस विषय क शतम आत्मा मर्मे बुद्ध मुलाश्रिता है, इसका विषय अति दुष्कर है । इसका विषय प्रबल मेरुपितान और चैतन्यमात्र आम तत्र म स्पर्शनस ही महन है । अत म मरु पितानरु मलप स्पर्श विषय और इमरु ग्रहरुकर गद्यमानभूत स्पर्शनद्रिय से इहम वानमात्र निव आ मतत्त्वरो दम् ।

शोभात् ६ । १०

अत्र इन्द्रियविषयासु भी इहमरु रूपायभारा से इहमरु म लिने मरु इहमरु म क्रोधमारुस इहमरु वानमात्र आ मा की दम् । रूपाय ४ होती है—क्रोध, मान, माया लोभ । ये प्रमण आतरिण और महन अव्यक्त है । अत प्रमम क्रोसे इहनेरु मटि मरुह है । क्रोध गात्र व्यक्त और गद्यमुखी हाता है, इम क्रोधमात्र स (नो वि कमा दय और गद्य नोर्म स निमित्तमात्र पारु व्यक्त होने स क्षणिक और चाण्डिगुण क विरामग्रन्थ है) इहमरु

म ध्रुव ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वको दत्तु ।

मानात् ६ । ११

मानरूपाय भावने हृत् का ज्ञान स्वभावमय आत्म तत्त्वको दत्तु क्रोधकी अपेक्षा मानरूपाय विलम्बसे व्यक्त होनेवाला भाव है यह वाद्यपर दृष्टि रखता हुआ भी विभावरूप मलिनान्ममुखी भाव है, तथा क्रोधक्षयक अनंतर मान क्षय होता है, इन कारणों से मान क्रोध की अपेक्षा आन्तरिक है । म मानरूपाय भाव से भिन्न ध्रुव ज्ञानमय आत्म तत्त्वको दत्तु ।

छलात् ६ । १२

छन्न विभावरूप से हृत् कर ज्ञानमय आत्मतत्त्वको देव्य । मानरूपायके उदयमे परपत्नार्थ पर दृष्टि है और अन्य लोकोंम विनयादि प्रवृत्ति करानेका भाव है । माया रूपाय मानरूपायकी अपेक्षा श्रव्य है, अपने आपम गुण गुणानेका भाव लिये हुए है, मानरूपाय क क्षयक वात् माया-द्रव्यका क्षय होता है आदि कारणोंसे माया रूपाय मानरूपायकी अपेक्षा आन्तरिक है । इत्त छन्नभाव से भिन्न ध्रुवान स्वभावकाय आत्मतत्त्वको दत्तु ।

लोभात् ६ । १३

लोमविभावरूपे हृत्कर ज्ञानमाय आत्मतत्त्वको

देव । लोभस्यापना विषय केवल वाय पलाग नहीं, अपनी प्रतिष्ठा, सम्मानेला, अपनी परिणति या रचना आदि सब ही लोभस्यापक रूप हैं । लोभस्यापका क्षय अरु ममस्त्वमोहक क्षयक प्राप्त हो जाता है, लोभ की रङ्गत मलिन विभायसे अपनाती हुई रहती है आदि कारणों से अन्य सर्व कथायामी अपक्षा आन्तरिक हैं । मैं अत्रुव यीपाधिक लोभस्यापसे हट कर ध्रुव ज्ञानस्वभाय मय निच आत्मतत्त्व को देखू ।

तर्कान् ६ । १४

म तर्कविचार विभायसे हटकर नन मात्र आत्म तत्त्व को देखू । विचारक परिणाम तर्केणारा क विरुद्ध चायोपशमित भाय है । नकी शोश्वत स्थिति नहा है, एक रूपना परम्परासे अन्तर्मुहूर्त तर्क ही रहती है । य ज्ञानाग भाय ह, आत्मस्वभायक अनुत्प नहा है । अत ममन्त तर्क ध्यय नूत ज्ञान स्वभाय से भिन्न स्वरूप है । य नातान् ज्ञान गुण विकार तो नहा है, परन्तु अन्ग हैं, मोहक मन्त्र से विपरीत काय क कारण भी हो सक्त है अत उपर्युक्त ममी अर्थक विभायसे तर्क आन्तरिक है त्त तर्कभावसे हटकर तर्क से विलक्षण अरुड पूर्ण ज्ञान स्वभायमय आत्मतत्त्व को देखू ।

भक्ति ६ । १५

भक्तिरूपपरिणाम से मी पृथक् ज्ञानभाव था मतत्वं
 सा दृश्य । धीतरान भगवान्क गुण व शुद्धपयाया म
 लन्व्य बाधती हृद् परिणति भक्ति है, अत विचार विरुद्धा
 स भक्ति आन्तरिक है तथापि परात्रित अध्यान् परमे विषय
 इगती हृद् तथा सापोपशमिक हान स अध्वभाव है तथा
 अनित्य है । म भक्तिरूप शुभोपयागक मात्र म्य वि
 भाव से मा हृद् ज्ञानभाव आमतत्त्व का दृश्य ।

ध्यानात् ६ । १६

म ध्यानभाररूप सापोपशमिक परिणामसे विजक्षण
 ज्ञान स्वभावमय आमतत्त्वसा दृश्य । ध्यान एकाग्र
 चिन्तानिराध का रूढत ह । भक्तिभाव तो पमोद भाव
 का लिय हृद् है तथा अथेक विचारको चन्तान हृद्
 रविमो विस्तारता हुआ है, किन्तु ध्यान गगद्वेष का
 पन्था न चनर मी तत्त्वस्वरूपक विचाररूप एकाग्रचिन्ता
 अनराधमय रहता है । अत भक्ति परिणामसे ध्यान
 परिणाम आन्तरिक है । यह ध्यान परिणाम कर्म व
 क्षयापशमादि आनम्बनसे हाता है अत अध्रुव है । म
 उम ध्यान परिणामत पृथक् ज्ञानस्वभावमय अपनेको देखे ।

ज्ञेयमात्रात् ६ । १७

उपयुक्त मर परार्थ और भाव वानस्वरूप न होनेसे ज्ञेय हैं अतः सर्वज्ञपमानसे चाह वह पर-पदाथ रूप हो वें आत्मा गुणों क विकाररूप अथवा आशिर गुणपथायरूप हो मभी नेयमान से उपयोग हटाकर अनादि अनन्त अहेतुक ज्ञान स्वभावमय या तत्त्वको देखू ।

ज्ञानव्यक्ते ६ । १८

मति, श्रुत अरधि, मन पर्याय, फेरल ज्ञान इस प्रकार ज्ञान की ५ व्यक्तिया हैं । य पाचों पर्याय हैं । पर्याय आत्मस्वभाव नहीं है । इन पर्यायों पर हाने वाली दृष्टि स्वभाव की अपत्ता परको विषय करनेवाली है । स्वभाव अनादि अनन्त है किन्तु कोइ पर्याय अनादि अनन्त नहा हाता । केवल ज्ञानपथाय प्रवाहसे अनन्त है किन्तु अनादि नहा । तत्त्वतः केवल ज्ञानपर्यायमी क्षणिक है, क्योंकि शुद्ध अवस्थाम ज्ञानकी व्यक्ति व वृत्ति प्रति ममय नहीं है । म सर्वज्ञान व्यक्तियोंसे लक्ष्य हटाकर ज्ञानस्वभावमय आत्मतत्त्व को ही देखू ।

ज्ञेयाकारात् ६ । १९

ज्ञान जब अपना वर्तमान वर्तन रखता है ता कुछ अलक्ष्य ग्रहण स्वरूप रखता है । ज्ञान जानने की वृत्ति

रम्यता है । जानन स्वपर वस्तुका विषय करक होता है ।
 अमका कारण स्वच्छता है । ज्ञानकी वृत्ति ज्ञानगुणम हा
 होती है । अत ज्ञानका अमर वाद्यपदार्थों म तो नहीं
 होता है किंतु वाद्यपदार्थ निमप्रकार वर्तत हैं जैसे ही
 आकार स्वरूप कें आकार को वर्तते हुए निन नयाकारों म
 होता है । इस प्रकार नयाकार ज्ञानगुण क क्षणिक परिण
 मन के अभिन आश्रय है । म ध्रुव ज्ञानस्वरूप हूँ, अत
 ज्ञेयाकारा से उपयोग हटाकर ध्रुव ज्ञानम्बभाप्रमय आस-
 तत्त्व को दए ।

ज्ञानमात्रम् ६ । २०

उक्त प्रकार सर्व अन्य-पर व निन पर अर्थ, भावोंसे
 हटने क बाद आत्मतत्त्व ज्ञानमात्रव्यवस्थित होता है । म
 वह ही ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हू । म अनत शक्तिमय हूँ
 किंतु ममस्त अनत शक्तियों का कार्य ज्ञानव्यवस्था क अर्थ
 है । अत म ज्ञानमात्र हू ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

तं लक्ष्णं ७ । १

उक्त प्रकार स समस्त पर व परभावोंसे उपयोगका

गन्तव्यं क, द्रव्य एव शुद्धपर्याय की पारतासे सुनिरिचन
 द्विव गत निव आत्मस्वभावको देखू । यह आत्म
 स्वभाव अन्तरग म मदा प्रकाशमान है, किन्तु लक्ष्य इम
 पर जब तक नहा जाता उस उपयोगकलिये तो उसकी
 लक्षि अत्यन्त दूर है । अतः अय उपयोग का विषय
 काद परभाव न रनाकर केवल आत्मस्वभाव का देखू जो
 कि सहज ज्ञानानदमय है ।

ज्ञातम् ७ । २

स्वसवदन ज्ञानके द्वारा वात उस आत्मस्वभाव का
 देखू । क्यों कि विना जाने हुए पदार्थका लक्ष्य नहीं
 बन सकता । इस आत्मस्वभाव क ज्ञान क लिय प्रथम
 त भेद विज्ञान आवश्यक है, क्योंकि अनादि परम्परा
 बद्ध कर्मयोगवश हुए यज्ञान क मितित स्वाद का
 रनेमाने जीवका भेद विज्ञान विना आत्मस्वभाव को
 जुदा करना अशक्य है । भू विज्ञान क पचाह ही
 निश्चयनेपक अन्तर्मनये केवल आत्मस्वभाव का
 संवेदन करना जाता है इसलिये समस्त परमारोंसे हटकर
 स्वसवदनसे ज्ञात भी उम आत्मस्वभावका देखू ।

स्वजातम् ७ । ३

समस्त परमारों से हटकर स्व में ही ज्ञान

आत्म स्वभाव को देखू । यह आत्मस्वभाव अस्तित्वक है, अतः कोई नया भाव नहीं है और न उत्पन्न होता है, किन्तु अनादि से स्व म ही वर्त रहा है, तथा जगत् भाव विक्रम परिणामन होता है तो स्व म ही होता है, अतः यह आत्म स्वभाव स्वजात है ।

प्रतिभातम् ७ । ४

समस्त परभावोंसे हटकर प्रतिभात हुए आत्मस्वभाव को देखू । यह आत्मस्वभाव जगत् तत्र चान्नी कल्पनाओं से घिरा रहता है, तत्र तत्र आत्मस्वभावका स्वभावका दृष्टि से परिचय नही हो पाता है । किन्तु जगत् प्रतिभामात्र रह जाता है, तत्र आत्म स्वभाव की अनुभूति होती है और उसके परचान्ति निरूप्य अस्तित्व म आव तत्र सुपरिचय का नाता बना रहता है । ऐसे प्रतिभाम आत्मस्वभाव का ही में लक्ष्य रखू ।

भूतार्थम् ७ । ५

भूतार्थनय के विषयभूत, भूतार्थस्वरूप कवल सत्य आत्मस्वभाव को देखू । जैसा स्वयं हुआ वर्त रहा अर्थ है, उस भाति हा मैं हू । अथवा जो अनादि से सत् स्वरूप अर्थ है उस रूप म हू । परात्रित भवपरिणतियुक्त मैं आत्मस्वभाव नहीं हू । स्वयं भूत भाव सामान्यस्वभावी

चेतन्य में हैं । जो भूतार्थ निज आत्मस्वभाव को मैं
ममस्त परमायों से हटकर लख ।

सत्यार्थम् ७ । ६

सत्यार्थ स्वरूप आत्मस्वभाव का लक्षण करू । यह
चेतन्यभाव ही सत्यार्थस्वरूप है अनादि अनन्त एक स्वरूप
हितमय सर्वाङ्ग है । 'सति भव अर्थ सत्यार्थ' जो
निज स्वयं सत् मध्य हो, एसा भाव सत्यार्थ है ।
पक्क आश्रय बिना मंदा निरचल होनेसे सदा सत्य स्वरूप
यह चेतन्यभाव ही आश्रय है । इसकी - आराधनासे
परमोच्छ्रित मिद्व परमों भी प्राप्ति हा लेनी है । एसा
सत्यार्थ स्वरूप आत्मस्वभाव का म लक्षण करता ह ।

परमार्थम् ७ । ७

सर्व अर्थों में उत्कृष्ट अर्थ स्वरूप निज आत्मस्वभाव
को देखू । जगत म अनन्तानन्त चेतन अचेतन द्रव्य हैं ।
उनम गारभूत चेतन द्रव्य ह, उनम भी अपन निय सार
एव शरणभूत निज आत्मद्रव्य है । वह अमल स्वभाव
मे अनुभव आशा हुआ आत्मस्वभाव रूप है । एसे परमा
र्थस्वरूप निज आत्मस्वभाव का देखू ।

स्वार्थम् ७ । ८

ए के सर्वप्रयोजनभूत आत्मस्वभाव को दम्
निज आत्मस्वभाव ही सर्व प्रकार स अपने हित क अर्थ
प्रयोजन भव है । समस्त परमार्थ स निरन्तर उपलब्ध हो

निन चैतन्यस्वभावका अलोकन व स्वभावम उपयोग
 का अवस्थान होना यही मन्त्रा आ मा का स्वार्थ है । तथा
 यही स्व अर्थ है । ऐसे आ म स्वभावमय निन प्रयोनन
 स्वरूप अपने आपको देखू ।

अवद्धम् ७ । ६

सर्वप्रकारक कर्ममलाक एव औपाधिक भावा से
 अवद्ध निन आत्मस्वभाव को देखू । आत्मस्वभाव स्वभाव
 का है, उसमें कर्मोंका उबन नहीं है और न औपाधिक
 भावोंकी स्थिति है, ऐसे अवद्ध आत्मस्वभावको ही म
 देखू । जैसा घोड़ा सामलों से बंधा है ऐसा कहने में कहा
 मानन क एक छोरसे घोड़ेका गला मरोर कर दोनोंका
 उबन नहीं है, वहा सामल के एक छोरसे साकलका हा
 दूसरा हिस्सा उधा हुआ है । इस तरह द्रव्यको द्रव्यम
 देखनेपर यह स्पष्ट है कि अमूर्तआत्मा मूर्त कर्मों से
 उगा हुआ नहा है । कर्मस कर्म ही बंधते हैं । ऐसे स्वरूप
 दृष्टिम सदा अवद्ध निन आत्मस्वभाव को देखू ।

अस्पृष्टम् ७ । १०

सर्व परद्रव्य व परभावा से अछूते इस आत्मस्वभाव
 का ही लक्ष्य हो । चैतन्यभावम कोई परपदार्थका प्रवेश
 नहीं और न विभारभावो का इसमें अधिकार है । क्योंकि

स्वभाव ता मत्वा स्वभावहा है स्वतंत्र है । जैसे जलम रहता हुआ विमनीपर जल से छुआहुआ नहा है । विमनीपर तो अपने स्वभावसेही वर्त रहा है । ऐसेही आत्मस्वभावकिमी शरीर आत्से छूरा हुआ नहा है । ऐसे अपृष्ट निज आत्म स्वभाव से म देख ।

अनन्यम् ७ । ११

जा अन्य अन्य नहीं किन्तु अनन्य एतन्स्वरूप है, एते आत्मस्वभावको म देख । स्वभाव अनाति निघन, एत स्वप्न निश्चल है । वह समय में स अन्य अन्य नहीं है । अय अन्य तो पयाय विराममात्र है । जैसे मिट्टी के घट आदि रानेस पिंड पिंडोला घट कपाल आदि अन्य अन्य है, परन्तु मिट्टी के स्वभाव ही शोर मे देगे ता वह अनन्य है । ऐसे आत्मस्वभाव दृष्टि मे देखा गया निज आत्मपदार्थ भी अनन्य है । उमे अभेद स्वभाव से दर्श जान पर परिचयम आयाहुआ आत्मस्वभाव अनन्य है । ऐसे अनन्य आत्मस्वभाव से अरलोक ।

नियतम् ७ । १२

अनियत ममत्त पर भावों से हट कर नियत आत्मस्वभाव का देख । यह आत्म स्वभाव नियत है मरी परिणतिया-त्यक्तिया मात्र तो कि दृशित

अनियत है । जैसे ममद्रुका जलस्वभावसे देखने पर वह नियत ही है किन्तु हवा आदि का निमित्त पारर उठी हुई तरंग या भवनों की दृष्टि देखने पर अनियत है, घटा भी जलस्वभाव से नियत है । इमी प्रकार यह आत्मस्वभाव शाश्वत नियत है । मात्र उपाधि का निमित्तमात्र पारर हुए विहारभाव अनियत हैं जो कि क्षणिक हैं । ऐसे नियत आत्मस्वभावको देख् ।

अविशेषम् ७ । १३

विशेष-भेद रहित अभिन्न आत्मस्वभाव को लख् । पदार्थ तो पदार्थ ही है, वह अलण्ड एक है । जैसे सुवर्ण में स्निग्ध पीत आदि भटा क देखनपर ही भेद प्रतीत होते हैं, परन्तु जितना रङ्ग सुवर्ण है सब को एक साथ परिचय में लाने पर ये भेद अभूतार्थ हो जाते हैं । इमी प्रकार यह आत्म आशा दृष्टि से ता ज्ञानवान्, दर्शनवान् आदि भेदरूप प्रतीत होता है, परन्तु समग्र आत्मा को परिचय में लाने पर ये सब भेद अभूतार्थ हो जाते हैं । यह पूर्ण आत्मा आत्मस्वभावमय है । आत्मस्वभाव चैतन्य भी विशेष भेद कल्पना से पर है । ऐसे अविशेष चैतन्यस्वरूप आत्मस्वभाव का मैं अवलोक्ये ।

असयुक्तम् ७ । १६

समस्त परपदार्थों में परभावा से हट कर मैं असयुक्त

शुद्ध आत्मस्वभावता अवलोक्य आत्मस्वभाव अनुपपन्न है ।
 यह स्वभाव किमी भी परमात्मक संयोगम नहीं है । इति
 खतिपा क्षणिक है, उनका मवव स्वभाव माय नही है,
 क्योंकि स्वभाव ता अनादि निधन एव स्वल्प है इति
 तिया क्षणिक और अन्य अन्य है । जैसे सूत्र दृष्ट क
 राने जल में जो अग्नि का निमित्त पाकर उष्ण इति है,
 यह जल क स्वभाव में नहा है । वैसे हा आत्मा में इति
 का क्षणिक आराम भी हा तो मा व आत्मविद्विद्विद्विद्वि
 हान में आत्मस्वभाव नहीं है । इस तरह सब कर्मों के
 मयाग में रहित अमयुक्त आत्मस्वभाव ही जन्म कर्म,

अजम् ७ । १५

समस्त पायमान विचारमात्रां मे दृष्ट्य इति कर्म
 सामा को अलोकि । यह आत्म स्वभाव अज है । कर्म
 यह पैदा नहीं हुआ अनादिमें दृष्ट्यमें अज है ।
 अतः हानेक कारण एव अपने गुणाने दृष्ट्य अज
 स्वभाव रखनेके कारण यह ब्रह्म है । इति अज इति मन्त्र
 आत्मस्वभावता म अवलोक्य ।

अनन्तम् ७ । १६

म अनन्त आत्मस्वभाव वैश्वानर इति मन्त्र इति ।
 आत्मस्वभाव अनन्त है । वैश्वानर इति अनन्त
 कान म कभी अत नहा आत्मा । वैश्वानर इति

अन्य है १ ज्ञान, २ दर्शन इनके विश्राम व योग्यता का भी अन्तर्गामी नही है अतः अतन्वयमात्र अर्थात् है । ऐसे अतन्वयमात्र आत्म स्वभाव का लक्ष्य रह निमग्न पयाप भी अतन्वयमात्र है ।

गुप्तम् ७ । १७

म इन्द्रिया द्वारा प्रकृत मर्ब पर व परमात्मासे उपयोग हटाकर गुप्त आत्मस्वभाव का लक्ष्य कर । यह आत्म स्वभाव मदा वर्तमान रहकर भी गुप्त है । इन्द्रिय मनक द्वारा अगम्य है । स्वयदनभाव क द्वारा गम्य है । हमने गुप्त होनेका ढग यह उन गया है कि परिणति या क्षण भरको तो आता है परन्तु क्षणभरको समग्र पदार्थ प्रदेशों म तन्मय हानाती है, इन विशेष विशारो क कारण यह आत्मस्वभाव गुप्त हुआ है और कवल स्वयदन द्वारा गम्य एव लोकिज्जना द्वारा अगम्य होने से गुप्त आत्म स्वभाव को म अलोक्य ।

स्वयम् ७ । १८

गुप्त वह आत्मस्वभाव म ही स्वयम् है । मोहभावा क कारण ही लौकिकजनों का 'स्वयम्' अग्रकृत है । किन्तु परमात्मा क विवक करने वाले भव्य का स्वयम् स्वयदन ज्ञान द्वारा प्रकृत है । यही स्वयम् स्वयम् क लिये महान है । ऐसे स्वयम् आत्म स्वभावमय निमग्न पदार्थ को

अवलोक १

सहजम् ७ । १६

म महन आत्मस्वभाव को अवलोक स्वभाव महन है । स्वाभाविक है । शब्दार्थ रहत है 'सह जायत इति महनम्' स ही तो है वह महन है । द्रव्यक म अहतुम् है । जो अहतुम् है वह स्वाम सहन आत्मस्वभाव चेतन्य भाव का म अ

ज्ञानमात्रम् ७ । २०

इस प्रकार नात स्वनात प्रतिमात तत्त्व व्यवस्थित है । सर्व विशेषण स्वभाव जय अनुभूत हाता है तब इ इ मय विकल्पों से अतीत ज्ञानानुभव

-०-

अथ अष्टमोऽङ्कः

तच्छृण्वानि ॥ १ ॥

मैं उम ही वानमात्र आत्मस्वभाव है । अध्याय में वानमात्र आत्मस्वभाव इ इ इ प्रतिपादित की है । सबप्रकार इ इ इ लिये आत्मस्वभाव सदा वाक्ता इ इ इ

विषय मं यह ध्य है कि म आत्मस्वभाव से मुक्त ।
 आत्मस्वभाव अमूर्त है, उसका स्वरूप का निश्चय करनेवाला
 प्रवृत्ता क श्रवण से यहाँ तात्पर्य है । अन्य मन्त्र से हटकर
 मात्र ज्ञानस्वभाव की ही ध्यान मुक्त । यह आत्मस्वभाव के
 परिचय का प्रारम्भ है ।

श्रवणगृहीयाम् = २

म उक्त ज्ञानस्वभाव का अग्रग्रहण कर । श्रवण द्वारा
 आत्मस्वभाव का ग्राहणतया परिचय पाकर अग्रग्रहण
 (प्रारम्भ) ज्ञान की यहाँ भावना की है । मन्त्रों जीवने
 अनादि से पर विषयक अग्रग्रहण किया अर्थात् ज्ञान किया
 और ग्रहण किया । क्योंकि आत्मविषयक ध्यान जोर ने
 मुक्त नहीं और मुक्त भी हा तो मन्त्रों भाति अग्रग्रहण नहीं
 किया । आत्मस्वभाव का अर्थात्ग्रहण होना द्वितीय परिचय
 है । म आत्मस्वभाव का अग्रग्रहण कर ।

धारयानि = ३

म उक्त आत्मस्वभाव का धारणा कर । किसी अर्थ
 क अग्रग्रहण क वाक्यदि धारणा नही हाती दृढ़ता से ज्ञान
 नही हाता वह उपयोग से उत्पन्न जाता है । अतः अग्रग्रहण क
 क वाक्य हृदयाङ्गम करन की भावना की है कि म उक्त
 ज्ञानमात्र आत्मस्वभाव क जिनकी कि प्राप्ति समस्त पर-
 भावा से निश्चय होने क फलस्वरूप है धारण कर ।

ब्रुवाणि = १४

मं आत्मस्वभाव को ही बोलू । कारण क बाद उस तत्त्व से निरूपण करने की सामर्थ्य प्रकट होती है । जिसे निमरी धारणा और रुचि होती है व गीत भी उमी ५ ही गीत ह, एसा प्राकृतिक सन्बन्ध है । अनादि मस्कारवश चले हुए राग के कारण वार्तालाप चलता है, सो मेर यदि काड वार्तालाप चल ना आत्मस्वभाव रिषयक चले, तानि मक उपयोगका व उपयागकी मफलताका मूल ह् उनो

गच्छानि = १५

म आत्मस्वभाव से ही जाऊ पाऊ । जानने का बोलन का फल सिमी एउ जगह टिखना, टिकाना है । वह एउ आत्मस्वभावहीहै । जगतम अन्य काड स्थान जाने, पान वाग्य नहा है । केवल निज ज्ञान स्वभाव ही पानेयोग्य है । यस्तुत यह था वा मिध द्रव्यसे तो पाता ही नहीं है । क्यादि विसा अन्य द्रव्यका सिमी अय द्रव्यमें प्रवेश नहा है । प्रश्न जो आपमें है, वह है ही उसक लिये क्या जाना क्या पाना ? उत्तर—हैं ता वह मय म किन्तु उमरा उपयोग नहा सिया अत नरीन एउ हैं उसे उपयोग करके हा जाना पाना है ।

जानीयाम् = १६

उस ज्ञानमात्र था मस्त्रमार का ज्ञान । यहाँ ज्ञानन
 स तापर्य अन्तर्गह स्त्रि पूर्वक ज्ञानन से है । किसी ज्ञेय
 न यदि आत्मस्वमारसे ज्ञात गुनी धारण से उमर
 यत्र रचना राग तथापि मारज्ञान विना यह मत्र प्रपन्न
 निरन्तर रहा । अतः भावज्ञान पूर्वक ज्ञानना आवश्यक है ।
 म उम ज्ञानमात्र आत्मस्वमारसे मात्र ज्ञानक अयनम्भन
 स तद् परिणामी होकर जान ।

मन्ये ८ । ७

म उम ज्ञानमात्र आत्मस्वमारका भाव । जाननेके
 वात् यही म है इस अन्त स्वीकृति का मानना प्रकृत है ।
 चैतन्य स्वमार का स्वीकारता विना पयापट्टि का हटना
 अममर है और पयापट्टिक हट विना समारवलेस का
 दूर जाना अत्यन्त अममर है । अतः यह चैतन्य आत्म
 स्वमार ही ध्रुव एक रूप अनादि अनंत निर स्वमार हान
 से म ह इस स्वीकारता क माय ज्ञानस्वमार को मान ।

इच्छामि ८ । ८

इस आत्मस्वमार का ही मैं चाहूँ । मसार का मूल
 चाह है । चाह म भी परवस्तु रिपयत्र चाह समार
 वर्द्धक ही है परवस्तु रास्तरमें न चाही जाती न प्राप्त
 होती, तथापि तद्विषयक वाञ्छा जो कि व्यर्थ ही है मसार
 का मूल है । इस चाह म ११ पीता ।

प्राप्तमम इस चाहना विनाश कर्णका ममार विरोधी
 भाव जा चेतन्यमार उमसी चाह जाती है । मुन चाने
 माने मा हा चाह जाती है । तो इस ममभम कर्ण
 आत्मस्वभावाका हा चाह । इस आत्मस्वभावाका आश्रय
 न हा मर्ममिद्धि है ।

रुचि ८ । ६

इम आत्मस्वभावाकी ही म रुचि कर । चाह
 से हा विशेष परिणति रुचि है । आत्मस्वभावाकी रुचि
 को व्यग्रहार स निश्चय मध्यगर्शन रुद्धा है । मिथ्या
 क रडय में परतुत्तरपरिषयक रुचि जाती है । विपरीत
 अभिप्राय अथान् पयायतुद्धि दूर हात हा आत्मरुचि जागृत
 होता है । म आत्मस्वभावाकी ही रुचि कर ।

प्रत्येमि ८ । १०

म आत्मा स्वभावाकी ही प्रतीति कर । रुचि क
 साथ रुद्ध ज्ञान सहित त्त विख्यामसी परिणति प्रतीति है ।
 आत्मस्वभावा विना अन्य द्रव्य कर्ण भी बुद्ध भा हितमाग
 नहीं है (म मानमात्र आत्मस्वभावाकी ही प्रतीति है ।

श्रद्धधानि ८ । ११

स्व चेतन्यभावाकी हा श्रद्धा कर । रव्यागुमय

इति बनाकर उसका स्वाद लू । अहो पर्याय बुद्धिवश अनतज्ञान तक निरस्वभाव की परिणति हाकर भी उपयोग स्वभावको न छू सका था । अब ध्रुव स्वभाव की पहिचान हुई तो इसी स्वभाव से लगाहुआ बना रह ।

प्राणुवानि ८ । १५

म इम आत्मस्वभावात् को ही प्राप्त कर । जगत म कोई अय वस्तु शरणसार नहा है । निमके पाने का उद्यम किया जावे । एक निर आत्मस्वभावात् ही एमा तत्त्व है जिमका स्वाभाविक विकास ज्ञान आनन्द से व्यक्त परपूर्ण है, इम ही आत्मस्वभावात् को म पाऊ ।

प्रतपानि ८ । १६

इस ही चैतन्यमात्रमें म तपू । अर्थात् स्थिर होकर दीप्यमान होऊ । आत्मस्वभावके भाव बिना यह नीच बाह्य आत्ममें तपता है, किंतु अपने चैतन्यस्वभाव में नहीं तपता । वास्तविकतप ज्ञाता द्रष्टा बने रहनेका है सो ज्ञाता द्रष्टा रह कर चैतन्य स्वभाव में प्रतपू ।

अनुभवानि ८ । १७

जैसा चैतन्य स्वभाव है उसके अनुमात्र होनेका अनुभव कहते हैं म चैतन्यस्वभाव की विशुद्ध स्थिति को ही सूचू, मानू, एकाग्र चिंता निरोध करू, स्पश, पाऊ,

प्रतीति क बाद उमम इस प्रकार ज्ञानभाव से घुलना रि उमकी धारणा या उसका सञ्चार निरतर बना रह एमा उद्धार साथ मेरे चैतन्यमात्रा अनुभवा मरु आदर बना रह इम भावना का श्रद्धान म मकतित कियो है ।

भावयेयम् ८ । १२

म इम तानमात्र निवन्नाभाव की भावना करु । उद्धान क अनतर भावना ही करना रह जाता है । एक भावना हा पुरुषार्थ है । भावना भवनाशिनी । म इस ही चैतन्यमात्र का पुन पुन आता ह इमकी ही निरतर भावना करता ह ।

ध्यायेयम् ८ । १३

इस ही आत्मस्वभावासी ओर एर प्रधानता से उपयोग लगाऊ ध्यान स होनगाला कमनिर्नरा शिव के पाने का मुख्य उपाय है । म इम आत्मस्वभावाके ध्याऊ । इतर सब विषयक चिन्तन छोड़कर एक प्रधानता से इसी आत्मस्वभाव म उपयोग का समाऊ ।

स्पृशानि ८ । १४

म इस आत्मस्वभाव रा स्पर्श करु । यहाँ स्पर्श से तापर्य स्पृशन इन्द्रिय के कार्यमे चरित्र से प्रधान है । जैसा १५१ है उसी

हैं-सम्प है, उस उपयोग लेकर, “म जानमात्र हूँ”
 इस प्रकार यह यह भावना कृता हुआ आराधन आगम्य
 आगम्य भाव न विभाग का दूर कृता हुआ जो स्वरूप
 म उपयोग से तन्मय हो जाता है, तो वह जानमात्र है ।
 परन्तु मविशेष अर्थ-या भा यदि हो तो भा वह इस
 जानमात्र का धारणा श्रद्धा से घनो पर रहता है और इस
 न प्रताप यह यह जानमात्र उपयुक्त होता है निम्ने
 प्रमाण से मन्त्रक निय जानमात्र स्थिति पाता है । तदह
 जानमात्रम् ।

इति तत्त्वसूत्रम्

* समाप्तम् *

उसीम तप ज़िससे कि मेरा उपयोग, इसी वामा । क
अनुम्य परिणति घनाय । इस प्रकार म निच चैतन्यभा
का अनुभव करू ।

सचेतानि ८ । १८

म इस ही चैतन्यभा का सचेतन करू । अनुभव म
मकन है सवन् स आग की स्थिति सचेतन है । अनुभव
म यत्न है सवर्तन म सहजता है । सर्वात्म दूर करके ज्ञान
का पानभाव रचना सचेतन है । म इम, चैतन्य स्वभा का
सचेतन करू ।

एकीभवेयम् ८ । १९

म इस चैतन्यस्वभावम ऐश्वर्यरूप रहू । यहा
अद्वैतस्थिति का दिग्दर्शन है । धानभा ज्ञानभा
को ज्ञेय करके परस्परक द्वैत का विनाश कर लेता है तब
यह ऐकीभा प्रकट होता है । चैतन्यभा ज्ञान चैतन्यको
चतता है तब निर्दिष्टप द्वारर अपनेकी इस ही म तमय
उपयोगी बनता है । ऐसे चैतन्यस्वभावम एक रूप हू ।
यहा वहा वाता वहा दमन वही ज्ञेय हा जाता है ।

ज्ञानमात्रम् ८ । २०

इम प्रकार म ज्ञानभा, स्वभा व्यक्ति म भा ज्ञान
मोत्र रहू । ज्ञानमात्र अथवा वाता मात्र रहने का जो दशा

